

श्रीकृष्ण सर्वरूप

- सुदर्शन सिंह 'चक्र'



श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा (उ०प्र०)

श्रीकृष्ण सर्वरूप

लेखक :

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशक

श्रीकृष्ण - जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण - जन्मस्थान सेवा-संस्थान,

मथुरा-२८१००१ (उ० प्र०)

दूरभाष — ०५६५-४२३८८८, ४२३७१४

आवृत्ति :

प्रथम : १९८७ ई० ११०० प्रतियां

द्वितीय : २००२ ई० २००० प्रतियां

मूल्य : ३५/- (पैंतीस रुपय)

वर्ण-संयोजक :

तरुण कम्प्यूटर ग्राफिक्स

गोपाल मार्केट, स्वामी घाट, मथुरा

फोन नं. ४२३८९७

मुद्रक :

मयूर प्रेस

पंचवटी, मथुरा ☎ 2530553

अनुक्रमणिका

कृ. सं.	पृ. सं.
१. अपनी बात	१
२. उपक्रम	४
३. असमञ्जस : बरसानेकी बालिकाओंका	१०
४. चन्द्रावली हार गयीं	२१
५. मैयाकी उलझन	२८
६. उपनन्द बाबा भी उलझनमें	३५
७. कुछ अद्भुत	४२
८. भगवती पूर्णमासी	५०
९. इन सबको क्या हुआ ?	५७
१०. बालक-बरसानेके	६५
११. बालिकाएँ-बरसानेकी	७२
१२. वनक्रीड़ा	८०
१३. दादाके लिए	८७
१४. दाऊ चौंके	९५
१५. उपसंहार	१०३
१६. परिशिष्ट (विवाह)	१११-११४

• • •

अपनी बात

यह पौराणिक उपन्यास है । यह उपन्यास केवल इसलिए है कि इसमें वर्णित घटनाएँ, सम्वाद आदि किसी प्राचीन ग्रन्थमें वर्णित नहीं हैं । सब उपन्यस्त किये गये हैं ।

मैं जानता हूँ कि मेरे लिए 'प्रभु आवत' 'वे मिलेंगे' 'ब्रजका एक दिन' 'उन्मादिनी यशोदा' 'शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा' तथा 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' के समान ही इस पुस्तकको भी पाठक उपन्यास स्वीकार न करके तथ्यात्मक ही मानेंगे ।

पुराणोंके विद्वान् एक विशेष प्रमाण 'सम्भव' मानते हैं । वैसा हुआ ही, इसका प्रमाण न होनेपर भी यदि परिस्थितिके अनुसार वैसा होना सम्भव न हो तो उस वर्णनको प्रामाणिक मान लिया जाय, यह पौराणिकोंका मत है । मेरे ऊपर उल्लिखित उपन्यासोंको मेरे पाठकोंने इसी अर्थमें ग्रहण किया है और इस पुस्तकके साथ भी यही होना है ।

मैं स्वीकार करलूँ कि पाठकोंकी मान्यता सत्यसे दूर नहीं है । क्योंकि मैं लिखता होऊँ तो सब मेरी कल्पना होगी; किन्तु कन्हाईके विषयमें आप ऐसा नहीं कह सकते और वह न लिखाये तो कुछ मुझसे लिखा भी जायेगा तो वह नीरस बकवाद मात्र होगा ।

कन्हाईको ही लिखवाना है—इसी भरोसे कलम लेकर बैठा हूँ । वह न लिखवाये तो कुछ बनेगा ही नहीं और वह लिखवाये तो अपने भोगे-भुगतेको ही लिखवायेगा, उसमें उपन्यास क्या ? उपन्यास कहनेका मुझे एक ही लाभ है—'कहाँ किस ग्रन्थमें लिखा है ?' इस प्रश्नका उत्तर देनेसे मैं बच जाता हूँ ।

'श्रीकृष्णकी ब्रजमें उपेक्षा हुई' सो भी आज या सौ-पचास वर्ष पहिले नहीं, मथुरा या द्वारिका जानेपर भी नहीं । जब वे ब्रजमें उपस्थित थे तब उपेक्षित हुए, डटकर उपेक्षित हुए—उपेक्षित होते रहे, एक दो दिनकी कोई एक दो घटना नहीं हैं, लगभग वर्षभर उपेक्षित होते रहे; क्योंकि वे सर्वरूप हो गये थे ।

मत पूछिये कि 'ऐसा दुस्साहस किसने किया ?' यह पूछिये कि किसने नहीं किया ? दाऊजी (गोप बालकोंका नाम सकारण नहीं ले रहा) को छोड़कर नाम ढूँढ़ना ही पड़ेगा किसने नहीं किया ।

यह चौंकानेवाली बात तो है; किन्तु आश्चर्य यह है कि इस बातपर किसीका ध्यान—भागवतके टीकाकार, आचार्य वर्ग, श्रीकृष्ण भक्त पद-रचयिताओंका भी ध्यान नहीं गया ।

मेरा भी ध्यान अकस्मात् गया जब सप्ताचार्य डा० वासुदेवकृष्ण घतुर्वेदी (मथुरा) श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्धकी कथा सुना रहे थे । कथामें यद्यपि उन्होंने इस प्रसंगकी कोई चर्चा नहीं की; किन्तु कथा सुनते हुए मेरे मनमें प्रश्न उठा—

'श्रीकृष्णकी भी मायाका प्रभाव श्रीराधापर तो नहीं पड़ेगा । भले श्रीदाऊजीपर प्रभाव पड़ा । ब्रह्माजी द्वारा बछड़े और ग्वाल-बाल हरण किये जानेपर श्रीकृष्ण ही बछड़े और गोप-बालक भी बन गये । उन गोप बालकोंमें श्रीराधाके दोनों भाई (श्रीदाम, सुबल) भी थे । श्रीराधाका उनके साथ कैसा व्यवहार रहा होगा ?'

यह बात मैंने भाई श्रीजयदयाल डालमियासे कही तो वे आग्रह करने लगे—'इसे लिखिये ।'

केवल एककी बात लेकर पुस्तक लिखना मुझे कठिन लगा । इसलिए भी कठिन; क्योंकि बरसानेकी बालिकाओंकी बातोंके विस्तारमें जानेमें मेरी रुचि नहीं है ।

मैंने कुछ और पात्र सोच लिए—'मैया, बाबाकी भी तो सामान्य स्थिति नहीं रही होगी ? वे क्या पहिलेके समान ही श्रीकृष्णको स्नेह दे पाते होंगे ? उनके स्नेहाधिकारी तो समान रूपसे बछड़े, दूसरे बालक ही नहीं, लकुट, वस्त्रादि भी हो गये थे । तब क्या वे आकर्षित नहीं करते थे ?

इस प्रश्नने मेरी सूची थोड़ी आगे चला दी—बस । मैं सूची ही बना सकता था, वह मैंने बना ही दी है । इस सूचीको बढ़ाना होगा तो कन्हाई बढ़ा देगा । उसे अपनी भोगी बातें ही तो लिखवा देनी है, अतः मैं लेखनी लेकर बैठ रहा हूँ ।

आपसे एक निवेदन है—इसे मान लेनेसे आपका लाभ होगा । आपके श्रीकृष्ण-चिन्तनको प्रेरणा मिलेगी । आप इस 'मेरी बात' को पढ़कर कम-से-कम उस दिन पुस्तकको आगे मत पढ़िये । स्वयं सोचिये कि उस वर्ष ब्रजमें लोग कैसे व्यवहार करते होंगे ।

पुस्तक पढ़नेपर लगे कि किसीकी कोई विशेष बात (बरसानेकी लड़कियोंके अतिरिक्त) छूट गयी है तो अवश्य मुझे लिख दें । सम्भव है अगले संस्करणमें प्रकाशक उसका उपयोग करलें ।

जीवनका ही मुख्य प्रयोजन—मुख्य सार्थकता है श्रीकृष्ण-चिन्तन । अतः श्रीकृष्णकी इस 'मंजु महिमा' के चिन्तनमें लगा जाय ।

—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा.

फाल्गुन शु० ७ सोमवार-२०३९ वि०

• • •

उपक्रम

अच्छा दिन था । आपाढ़का महीना था । शुक्ल पक्ष था और वर्षा प्रारम्भ नहीं हुई थी; किन्तु आकाशमें बादल छाये थे ।^१

अच्छा दिन इसलिए भी था कि दाऊदादाका जन्म-नक्षत्र था । वह उस दिनके पूजनादिके लिए नन्दगाँव ही रुक गया था । वनमें वत्सचारण करने वह आता है तो कन्हाई और दूसरे गोपबालक भी उसका कुछ तो संकोच करते ही हैं । उसके न होनेसे सब पूरे स्वच्छन्द थे ।

कोई नहीं कह सकता कि उस दिन दाऊदादा साथ होता तो उस दिनकी लीलाका क्या रूप होता । अघासुरके मुखमें वह यदि बछड़े—बालकोंके साथ चला भी जाता तो उसे अघासुरका विष मूर्छित कर पाता ? अपने सखाओंको मूर्छित होते देखकर या ऐसा होनेसे पहिले वह अघासुरको मार देता या उसपर दया करता ?

एक बार मानलें कि दाऊदादा सखाओंसे पृथक् किसी वृक्षके तले या कुंजमें बैठा रह सकता था उस समय । कन्हाई ही सखाओंसे कुछ पीछे रह गया था तो दाऊ भी रह सकता था । अतः अघासुरके उद्धारमें बाधा नहीं भी पड़ सकती थी ।

लेकिन ब्रह्माजी बछड़े और बालक चुरा पाते ? ब्रह्माजी कुछ भी करते, दाऊको तो उनकी माया स्पर्श करनेकी शक्ति रखती नहीं । तब दाऊ-कन्हाई दोनों बछड़े ढूँढ़ने जा नहीं सकते थे । बालक दाऊदादाको जाने नहीं देते और दाऊ या कन्हाईमें कोई बालकोंके समीप रहता तो सृष्टिकर्ताके चार सिर भी कोई युक्ति सोच पाते ?

१. इस विवरणका आधार है । श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धके अध्याय ११ को आप देखलें । उसमें 'अंकुरैः' भी भोजनपात्रमें हैं । बांसके अंकुर आपाढ़में निकलते हैं । उनकी सुपेलियाँ अच्छा पात्र होती हैं । वहाँ मयूरोंके नाचने, हंसोंके होने, मेढकोंके फुदकनेका वर्णन है । बगुले भी हैं, कोकिल भी कूजती है और दाऊजीका जन्म-नक्षत्र होनेसे वे वनमें नहीं आये हैं । उनका जन्म-नक्षत्र स्वाती है जो आपाढ़ शुक्ल अष्टमीसे एकादशीतक ही पड़ सकता है । बादल छानेका तो वहाँ वर्णन है ।

वह दिन इसलिए भी अच्छा था कि उस दिनकी लीला सम्भव हो, इसलिए दाऊदादाको वनमें नहीं आना था ।

इसलिए भी वह दिन अच्छा था कि एक ओर विश्वके निष्कृष्टतम देवता—पापके ही अधिदेवता अघका उस दिन कन्हाईने उद्धार कर दिया और दूसरी ओर विश्वके ही सर्जक देवताओंके पिता महर्षि कश्यपके भी पितामह ब्रह्माजीको धनचक्कर बना डाला । बहुत सबको मायाके चक्करमें घुमाते हैं; किन्तु नटखट नन्दलालने उस दिन उन्हें बतला दिया कि वास्तविक माया होती क्या है और वह क्या कर सकती है । उसकी गति कहाँतक है और वह कुंठित भी हो तो कहाँ हुआ करती है ।

अच्छा दिन उसे इसलिए भी कहना है, मानना चाहिए; क्योंकि उस दिन कन्हाई सबसे पहिले उठ गया था और उसीने अपने शृंगकी मधुर 'धूतू धू' करके सब सखाओंको जगाया था ।

जिसका काम ही सोते रहने वालोंको जगाना है, जन्म-जन्मसे अज्ञान निद्रामें सोये जीवोंको जो जगानेमें एक मात्र समर्थ है, वह पड़ा-पड़ा सोता रहता था और उसे सखा या भैया जगाया करते थे—यह कुछ उचित ढंग था ? ऐसे दिन अच्छे कैसे कहे जा सकते हैं । अच्छा, सहज स्वाभाविक दिन वह जब कृष्ण करुणा करके अपनोंको जगानेको स्वयं उद्यत हो और जगावे । वह धन्य दिन ऐसा ही था ।

कन्हाई उस दिन पहिले स्वतः उठ गया था । उसी दिन मध्याह्नमें न लौटनेका उसने सखाओंके साथ पहिलेसे निश्चय कर लिया था और मैयाको किसी प्रकार मना लिया था कि वह वनमें छाक नहीं भेजेगी । सब प्रातः अपने-अपने छीकोंमें मध्याह्न भोजन साथ ही ले जायेंगे ।

आप जब कभी मित्रोंके साथ पूर्व योजना करके कहीं 'पिकनिक' करने निकलते हैं, वह दिन आपको अच्छा, आनन्ददायी और उल्लास-मय लगता है या नहीं ? श्रीब्रजराजकुमारका अपने मित्रोंके साथ योजना बनाकर वन-भोजनके कार्यक्रमका वह दिन अच्छा तो मानना ही पड़ेगा ?

उस दिनके अन्तमें—यह अन्त आपकी, ब्रह्माजीकी या ब्रजके दूसरे लोगोंकी गणनाका मत लीजिये । दिनान्त मानिये ब्रजके बालकोंकी गणनाका

और उस दिनान्तमें उनको उनके प्राण सखाने जो उपहार दिया, वह आपके स्वप्नमें सुलभ होनेकी बात तो दूर—सृष्टिकर्ताके लिए भी स्वप्नमें भी सुलभ नहीं। उनकी सृष्टिमें दूसरे किसीको—फिर चाहे वह जो हो, जितना भी बड़ा हो, भला कैसे सुलभ हो सकता है।

सृष्टिमें कर्मके दो ही समुदाय हैं यदि आप व्यर्थ या निष्फल कर्मको छोड़ दें—पाप और पुण्य। इन्हींके आधारपर सृष्टिका सम्पूर्ण चक्र चला करता है। उस दिनान्तमें बाबा ब्रजराजके लाड़िलेने पापको—अघको मारा ही नहीं, उसका निष्प्राण शरीर अपने मित्रोंको खिलौना बनाकर—लुका-छिपी खेलनेको गुफा बनाकर भेंट कर दिया। आकार वही, अघके देवताका शरीर; किन्तु निष्प्राण। ‘मित्रो ! इसमें छिपना चाहते थे ? लो छिपो, खेलो इससे जब जितना जी चाहे। यह कुछ बिना कहे, बिना बताये मित्रोंको कन्हाईने उपहार दे दिया।

‘नन्दुवाणो दिशते समक्षं’ (भा० १०-८१-३४)। यह तो ब्रजनव-युवराजका सहज स्वभाव है। यह चपल किसीके पात्रमें मोदक भी रखना चाहेगा तो उसे किसी कपि या पुष्पको दिखावेगा और तब उसके सामनेके पात्रमें मोदक रखकर ऐसा ढंग बनावेगा जैसे वह मोदक दूसरे सखाने न रखा हो तो कोई भल्लूक या शशक रख गया हो।

मैं यहाँ उस दिनकी कथा नहीं लिखूँगा। इस पुस्तकमें भी नहीं लिखूँगा। कथा आप न जानते हों तो ‘नन्दनन्दन’में विस्तारसे ‘अघ अर्दन’ और चतुर्मुखबाबाकी ‘उठो-बैठो, दण्डवत् करो’ के व्यायामकी कथा लिखी गयी है। उसे वहाँ देख लें या श्रीमद्भागवतमें पढ़ लें। इस पुस्तकमें तो उस दिनके सायंकाल वनसे लौटते समयजो कुछ घटित होने लगा, केवल उसकी चर्चा करनी है।

इस दिनकी चर्चा भी इसलिए यहाँ करनी पड़ रही है; क्योंकि यह दिन स्तुति करने योग्य है। इस बातको छोड़िये कि बूढ़े नहीं सही, अघेड़ सृष्टिकर्ताको एक नन्हें पाँच वर्षके ऐसे गोपबालकके सामने नाक धिस-धिसकर स्तुति करनी पड़ी, जिसे ठीक ठिकानेसे अपनी कछनी बाँधना भी नहीं आता था। उसके लिए भी उसे दाऊदादा या भद्रकी सहायता अपेक्षित होती थी।

कन्हाईकी स्तुतिकी बात नहीं करता। यद्यपि सब बड़ी दाढ़ी-जटावाले

इसकी स्तुति किये बिना नहीं मानते और आपका जी करे तो आप भी भरपेट इसकी लम्बी चौड़ी स्तुति कीजिये । मैं मना भी करूँ तो आप माननेवाले तो हैं नहीं, न आप यही समझनेको प्रस्तुत होंगे कि मेघश्याम गोपकुमार स्तुति सुनकर गम्भीर मुख भले बनाले, प्रसन्नतासे खिल उठनेवाला नहीं है । इसे अंगूठा हिलाकर जितनी सरलतासे प्रसन्न देखा जा सकता है, स्तुति-पूजासे कभी सम्भव नहीं ।

मैं तो उस दिनकी स्तुति-प्रशंसा कर रहा हूँ । वही तो दिन था जब ब्रह्माजीके बछड़े और बालक हरण कर लेनेपर कन्हाई बेचारा हो गया । उसे अकेले वनसे ब्रजकी ओर लौटना पड़ा; क्योंकि उस दिन वनमें दाऊदादा गया नहीं था और बछड़े तथा सखा ब्रह्माजी किसी गुफामें मायासे सुला आये थे । वे सब तो वहाँ आनन्दसे खर्राटे लेते सो रहे थे और कन्हाई इस स्थितिमें भी नहीं था कि उन्हें उलाहना देता ।

कन्हाईका स्वभाव है कि यह अपनी हार नहीं मानता । श्रुति-शास्त्र, सन्त इसे अजित क्या कहते हैं, यह अड़ियल बन गया है । खेलमें हारेगा भी तो बहाने बनावेगा । उस दिन भी इसने हार नहीं मानी और सच तो यह है कि यह अपनोंको छोड़कर कहीं हारता भी नहीं । श्रुति इसे यों ही अजित नहीं कहती ।

बिचारे ब्रह्माजी तो केवल पुर्जे जोड़नेवाले हैं । वे न पञ्चभूत बनाते, न जीव, न कर्म-संस्कार । वे इनको मिलाकर केवल शरीर बनाते हैं ।

कन्हाईको तो सदा-सदाका स्वरूप बने रहनेका अभ्यास है । जितने जिन रंगोंके, जिस आयु या स्वभावके बछड़े थे, उनके गलेकी घण्टियाँ, माला भी कन्हाई बन गया ।

सखा तो उसके ही थे । वे तो स्वरूप ही हैं । अतः सब सखा बन गया श्रीकृष्ण तो क्या विशेष बात हुई ? लेकिन यह नटखट चिद्धन तो उनके वस्त्र, आभूषण, छड़ी-छीके, वंशी-वेत्र, लकुट-मुकुट सब बन गया । वे सब पदार्थ जो जड़-अचर हैं । लेकिन जड़ जो आपको जगतमें दीखता है, वह भी यही नटखट है या नहीं ? यदि हिले-डुले बिना, आँख-कान, बन्द करके कहीं छिपने बैठ जाय तो आप इसे जड़ मान लेंगे ?

यह सब बन गया । इसलिए बन गया; क्योंकि अपनी हार मान लेना इसका स्वभाव नहीं और बेचारे ब्रह्माजी जो इसके चक्करमें पड़े, हार गये । ऐसे हारे कि भला कोई ऐसे भी कहीं हारता है । उनको तो लगा कि मेरा ब्रह्मापद चला ही गया । सहस्र-सहस्र ब्रह्मा कन्हाईने उन्हें दिखाकर मानो कह दिया—‘मेरे पास ब्रह्माओंकी हाट है । तुम्हारे जैसे ब्रह्माका मूल्य मेरे यहाँ कौड़ियोंमें नहीं होता ।’

दण्डवतपर दण्डवत करते चले गये थे ब्रह्माजी और नन्दबाबाके इन युवराज महोदयपर ऐसी ठस्क चढ़ी थी कि सहस्रों दण्डवत करने और आठों हाथ जोड़कर स्तुति करने, गिड़गिड़ानेपर भी उस चार मुखके दड़ियलसे आपने एक शब्द भी बोलना उचित नहीं माना ।

यह कथा तो श्रीमद्भागवतमें और विस्तारसे ‘नन्दनन्दन’ में है । उसमें जो नहीं है, उसकी चर्चा यहाँ इस पुस्तकमें करनी है ।

वह यह नहीं है कि इतना सब कहके भी कन्हाईने भले चतुर्मुख सृष्टिकर्ताको हरा दिया, वह स्वयं हार गया और चुप रहकर गुमसुम बने रहकर इस पराजय तथा इसके परिणामको सहते रहनेके अतिरिक्त इसके पास भी कोई उपाय नहीं था ।

यह जो श्रुति वर्णित अजित, अपनोंके सामने जीत नहीं पाता । अपनोंसे यह सदा हारता रहा है—केवल ब्रजमें गोपबालकोंसे ही हारता हो, ऐसी बात नहीं है । ब्रज-बालकोंसे तो खेलमें कभी भूले-भटके भी नहीं जीत पाता । अपनी हार मानता नहीं और हारता ही हारता है । दिनमें कई-कई बार हारता है; किन्तु और भी कहीं किसी अवतारमें अपनोंसे यह जीता हो, कोई उल्लेख, कोई उदाहरण आपको कहीं मिला है ?

दिन आनन्दसे बीत गया । ब्रह्माजीको हराना था, हरा दिया । दूसरे जो तटस्थ थे, सबको लगा कि श्रीकृष्णचन्द्र सृष्टिकर्तापर भी विजयी हुए । कहीं आप भी तो अबतक इसी भ्रममें नहीं हैं ?

सायंकाल बछड़ोंको लेकर लौटना था । बछड़े नहीं, बालक नहीं । सब कन्हाई ही बना और लौटा भी प्रतिदिनकी ही भाँति; किन्तु बरसाने और नन्दगाँवमें तो सब अपने थे । उन अपनोंसे जीता नहीं जा सकता । उनमें-

से प्रत्येकसे कन्हाई सदा हारता रहा है, इस दिन भी हार गया और यह पराजय इसे लगभग वर्षभर भुगतनी थी । इससे छुटकारा तो इस अनेकरूप बननेकी हेकड़ीको जो ब्रह्माजीके सामने प्रकट की गयी थी, समेटकर ही मिलना था ।

वनसे लौटते समय मार्गमें पहिले ही बरसाना पड़ता था, अतः श्रीकृष्णकी यह उपेक्षा भी वहींसे प्रारम्भ हुई । इस प्रकार इस पुस्तकका प्रारम्भ मैं श्रीकीर्तिकुमारीकी उपेक्षासे ही करनेको विवश हूँ ।

प्रेमकी अधिदेवतासे उपेक्षाकी आशंका ? इस तर्कसे कोई लाभ नहीं है । अतः आइये आप भी भले अनेक असंख्य रूप बना हो; किन्तु दैवने (ब्रह्मा बाबा ही तो दैव हैं) जिसे सचमुच एकाकी और बेचारा बना दिया है, उस कन्हाईको दूरसे देखते उसके पीछे-पीछे चलिये ।



‘असमञ्जस :

बरसानेकी बालिकाओंका

‘अरे !’ वंशीध्वनि सुनायी पड़ी और प्रतिदिनके समान सायंकाल बरसानेकी बालिकाएँ मार्गके समीप पड़नेवाले छज्जेपर पहुँच गयीं । बहुत देर हो गयी थी उन्हें प्रतीक्षा करते । छज्जोंपर पहुँच तो गयी थीं वृद्धाएँ और कुलवधुएँ भी; किन्तु बालिकाएँ सबसे पृथक् प्रायः एक साथ एक ही छज्जेपर बैठा करती हैं । बछड़े बालकोंके आगे-आगे दौड़े आ रहे थे । उनमें जो बछड़ा सबसे आगे था, उसपर ललिताकी दृष्टि पड़ी और वह चौंक गयी ।

‘देख, आज तो अपने बछड़े सीधे अपने गोष्ठोंकी ओर दौड़े आ रहे हैं ।’ दूसरी बालिकाकी दृष्टि गयी और वह मुग्ध स्वरमें बोली—‘कितने सुन्दर बछड़े ! बिचारे दिन भर वनमें भटकते रहे । अब भूखने इन्हें अपनी माताओंका स्मरण करा दिया है ।’

प्रतिदिन सब बछड़े एक साथ नन्दगाँवकी सीमातक चले जाया करते थे । बड़े गोप वहाँसे उन्हें घेर-घारकर लौटा लाते थे । बरसानेके बालक भी नन्दगाँवकी सीमातक तो मयूर-मुकुटी सखाके साथ जाते ही थे । वहाँ उसे अंकमाल देकर लौटते थे ।

‘आज तो अपने सब भैया भी यहींसे अपने घरकी ओर लौटे आ रहे हैं ।’ एक लड़कीने आश्चर्यके स्वरमें कहा और गवाक्षके साथ लगकर बाहर देखने लगी ।

‘ललिता ! तुम लोग बछड़े देखना चाहो तो देखो !’ सहसा श्रीकीर्तिकुमारी उठ खड़ी हुई और भवनमें भीतर जानेको मुड़ पड़ीं । उनका स्वर्ण-गौर श्रीमुख लाल-लाल हो उठा था । कमललोचन भर आये थे ।

‘क्या हुआ ?’ उनके भरे-भरे स्वरसे सब बालिकाएँ चौंकी । सबने घूमकर अपनी सखीकी ओर देखा; किन्तु तबतक उनकी वह प्राणप्रिय सखी मुड़कर चल चुकी थी ।

कितनी उत्कण्ठा, कितना उल्लास सायंकाल इन सभी बालिकाओंमें

आता है । पूरे दिन श्रीवृषभानु-नन्दिनी खिन्न बनी रहती हैं । सायंकाल ही तो उनका श्रीमुख सुप्रसन्न दीखता है । वनसे आती वंशीध्वनि सुनकर आज भी वे सदाकी भाँति ललिताके साथ छज्जेपर गवाक्षके समीप आ बैठी थीं । उनको अचानक उठते देखकर उनकी सब सखियाँ चौंक गयीं, सब उनके प्रायः साथ ही उठीं ।

सब पाँचसे सात वर्षके ही भीतर बचकी बालिकाएँ । उनसे बड़ी-बूढ़ियोंके समान गम्भीर बने रहनेकी कोई आशा कैसे कर सकता है । लेकिन इधर बहुत समयसे प्रायः श्रीराधा पूरे दिन अनमनी-उदास रहती हैं । उनकी सखियाँ तो जैसे उनकी प्रतिविम्ब है । वे खिन्न होती हैं तो सब जैसे अधमरी हो जाती हैं ।

श्रीवृषभानु-नन्दिनी बहुत शीघ्र गतिसे छज्जेसे उतरकर अपने कक्षमें चली गयी थीं । उन्होंने कक्ष द्वार भीतरसे बन्द कर लिया था । उन्हें कभी किसीने इतने वेगसे चलते नहीं देखा था । वे तो कभी दौड़ती या उछलती-कूदती नहीं हैं । उन्हें न उच्च स्वरसे बोलना आता और न दौड़ना । वे तो हंस-शाविकाके समान बहुत नन्हें डग उठाती चलती हैं । आज उन्हें क्या हो गया ?

लड़कियोंमें अधिकांश उनके पीछे दौड़ती आयी थीं; किन्तु उनके पहुँचते-पहुँचते द्वार बन्द हो गया था । इस समय श्रीवृषभानु बाबाका वह विशाल भवन प्रायः सूना था । प्रायः नित्य ही नगरकी सब नारियाँ पथके समीप पड़नेवाले भवनोंके छज्जोंपर पहुँच जाया करती हैं । कुछ वृद्धाएँ भवन द्वारोंपर या पथकी ओर बाहर भी जा खड़ी होती हैं ।

पुरुष तो भला इस समय कोई मिल ही कैसे सकता है । सभी वृद्ध-युवा तो पथपर चले गये होते हैं और बालक तो बछड़े लिये वनसे वनमालीके साथ लौटते हैं ।

बड़े गोप कुछ पहिले ही गायें लौटा लाते हैं । गायोंको गोष्ठमें करके, उन्हें कुछ चारा-पानी डालकर वे शीघ्रतामें पथपर पहुँचते हैं । गायोंको गोष्ठमें पहुँचाकर पहिले ही बाँध न दें तो वे पथपर नहीं भाग आवेंगी ? तब बछड़ोंको दूध पी लेनेसे रोका जा सकेगा ?

गायें बरसानेसे घरकर भरा पंट लाँटती हैं । उनको न घारा आकृष्ट कर पाता और न पानी । वे तो हुंकार भरती दाँड़ी आती हैं । उन्हें लगता होगा कि उनके बछड़े गोष्ठोंमें होंगे । गोष्ठमें पहुँचकर फिर निकल भागनेको दाँड़ना चाहती हैं ।

बछड़े हैं कि बरसाने आते समय भी हुंकार नहीं करते । वे तो उस मयूर-मुकुटी वंशीवादकको ही पीछे-मुड़कर सूँघ लेनेको उत्सुक रहते हैं । बड़े गोप सीमातक साथ जाकर उन्हें किसी प्रकार हाँक न लावें तो उन्हें अपने गोष्ठ या अपनी माताका स्मरण ही न आवे; किन्तु आज सब बरसानेके बछड़े अपने गोष्ठोंकी ओर भागे आये थे ।

गायें तो वंशीध्वनि सुनायी पड़े तभी से रँभाने लगती हैं । हुम्मा, हुम्माकी धूम मचा देती हैं ।

इस दैनिक क्रममें किसीका भी ध्यान इस समय देरतक बालिकाओंकी ओर नहीं जायेगा, यह बात तो सुनिश्चित थी । बालिकाएँ चाहें तो भी अभी कोई बड़ी-बूढ़ी उनकी बात कदाचित् ही सुननेको प्रस्तुत हो ।

श्रीराधाने कक्ष-द्वार बन्द किया ही था कि उनकी सहेलियाँ, बहिनें उनके द्वारपर पहुँच गयीं । द्वार बन्द होते देखकर सब एक साथ रो पड़ीं । अब सबने आपसमें एक दूसरीकी ओर देखा । प्रायः सबके अश्रु कपोलोंपर लुढ़कने लगे ।

‘यह द्वार भी हम लोगोंके लिए कभी बन्द होगा, यह तो सोचा ही नहीं था ।’ विशाखा ने रोते-रोते ललिताको गले लिपटा लिया और हिचकी लेते बोली—‘अब हमारा क्या होगा ललिता ?’

‘तेरा और क्या होना है ?’ चन्द्राबली कुछ भण पीछे आयी थीं । लेकिन उन्होंने विशाखाकी बात सुन ली थी । वे शैशबसे अत्यन्त तेजस्विनी हैं । किसीसे हिचकना, दबना, संकोच करना जैसे उन्हें आता ही नहीं । बरसानेमें तो बड़ी-बूढ़ियाँ भी कहती हैं—‘चन्द्रा कन्या क्यों हुई ? यह तो बड़े-बूढ़ोंको भी दो टूक सुना देती है । अपनी हठ पूरी करनेके आगे इसे कुछ सूझता ही नहीं ।’

‘जीजी ! आप..... !’ विशाखासे बोला नहीं गया । श्रीवृषभानु बाबाके भाईकी यह कन्या इन लड़कियोंमें आयुसे तो बड़ी है ही, तेज-तर्रार भी है ।

‘राधा !’ चन्द्रावलीने कुछ अधिक ही जोरसे द्वार खट-खटाया और आदेशके स्वरमें बोली—‘द्वार खोल !’

‘तू द्वार बन्द करके क्यों बैठी है ?’ द्वार खुलना ही था, अविलम्ब खुला और श्रीराधाने चन्द्रावलीसे लिपटकर उनके कन्धेपर सिर रखा तो चन्द्रावलीने एक साथ ढेरों प्रश्न कर डाले—‘तू रो क्यों रही है ? गवाक्षसे क्यों उठ आयी ? तुझे हुआ क्या है ? तुझे किसीने कुछ कहा है ? मैं अभी बाबासे कहूँ कि आज ही तेरा ब्याह कर दें ?’

श्रीराधाने अपनी हथेली चन्द्रावलीके मुखपर रख दी । वे अपने ताऊकी इस तेजस्विनी कन्याको जानती हैं । यह भले उनकी प्रतिस्पर्धिनी हों; किन्तु यह भी सच है कि उनके लिए पूरे नगरसे झगड़ना हो तो यह एक क्षण भी नहीं हिचकेगी और बाबासे यह चाहे जो कह दे सकती है । उसे करनेकी हठ करके उन्हें विवश कर देना भी इसके लिए कोई समस्या नहीं है ।

‘जीजी !’ बहुत धीरे-से प्रायः कानसे मुख सटाकर श्रीराधाने कहा—‘तुमने आज बछड़े नहीं देखे ?’

‘बछड़े देखे क्यों नहीं !’ चन्द्रावली खुलकर हँस पड़ी—‘बछड़े देखे, बालक देखे और उसे भी देखा जिसे देखने तू, मैं और सब वहाँ प्रतिदिन बैठा करती हैं ।’

‘तुमको कुछ विचित्र नहीं लगा जीजी ?’ श्रीराधाने अब मुख उठाकर सीधे चन्द्रावलीके मुखकी ओर देखा ।

‘तू एक बात बता’ चन्द्रावलीने सीधे उत्तर न देकर दोनों करतलोंमें श्रीराधाका मुख बड़े स्नेहसे पकड़कर अपना मुख अधिक समीप लाकर पूछा—‘मैं पूछूँ ? बतलावेगी तू ?’

‘जीजी !’ श्रीराधाने तनिक चौंकते ढंगसे कहा—‘मुझसे कोई अपराध हुआ है ? तुमने क्यों सन्देह किया कि तुम कुछ पूछोगी तो राधा नहीं बतलावेगी । तुमसे मैंने कभी कुछ छिपाया है ?’

‘वह ब्रजराज बाबाका लाल जितना सुन्दर है, उससे अधिक ही नटखट है ।’ चन्द्रावली हँसती जा रही थी—‘कलको वह सुबल या श्रीदामका स्वांग बनाकर तेरे समीप आ जाय तो तू क्या करेगी ?’

‘जीजी, तुम क्या करोगी ?’ श्रीराधा इस बार भरपूर चौंक गयीं । यही तो समस्या है उनकी ।

‘मेरी छोड़ !’ चन्द्रावलीने वैसे ही हँसते-हँसते कहा—‘मैं जो करूँगी’ उसे तू कभी नहीं कर सकेगी और मैं सुनिश्चित नहीं हूँ कि उस समय सचमुच क्या करूँगी ।’

‘फिर भी’ ललिताने अब आग्रह किया—‘जीजी, तुम क्या-क्या कर सकती हो ?’

‘मैं उसके कान पकड़कर उसे ऐसा डाँट दे सकती हूँ कि उसकी सिट्ठी-पिट्ठी भूल जाय । चन्द्रावलीने हँसते-हँसते कहा—‘मैं उसी समय उससे व्याह कर ले सकती हूँ । वह अस्वीकार करे तो भी बलपूर्वक । वह मुझसे अधिक बलवान नहीं लगता मुझे ।’

श्रीराधा मुख देखती रह गयीं । दूसरी भी कोई बालिका नहीं बोली । सब जानती हैं कि उनकी यह चन्द्रा जीजी कुछ भी कर सकती हैं ।

‘ललिता !’ चन्द्रावलीने अब श्रीराधाके कपोलोंसे हाथ हटाया और बोली—‘तू इस राधासे बात कर । यह बहुत भोली है । मैं पूछूँगी तो यह और गुंगी हो जायेगी । आज वनसे लौटे बछड़े और उनके चरानेवालोंको देखे बिना भी हमारा भोजन पच जायेगा । वे हमारे गोष्ठों या भवनमें ही रहेंगे ।’

चन्द्रावलीने किसीसे और कुछ नहीं कहा । वह लौट पड़ी । उसके चले जानेपर श्रीराधाने कहा—‘ललिता’ मैं कभी अनुमान नहीं कर सकी कि चन्द्रा जीजी कब क्या करेगी । यह ऊपरसे जितनी हँसमुख और विदग्धा अपनेको दिखलाती है, भीतर उतनी ही अधिक स्नेहमयी और भावुका है । मुझे सन्देह है कि यह गोष्ठमें ही जायेगी ।’

‘मैं देख आऊँ ?’ एक बालिकाने उत्साहपूर्वक कहा ।

‘क्या करेगी देखकर ?’ श्रीराधामें कभी कोई ऐसी प्रवृत्ति—तनिक

भी ओछापन देखा नहीं गया । उन्होंने कह दिया—‘चन्द्रा जीजी कल स्वयं बतला देगी । उसे कभी कुछ छिपाना नहीं आता । लेकिन तू गोष्ठमें गयी तो बछड़े सब तुझे चाट-चाटकर आधी कर देंगे ।’

बालिकाएँ हँस पड़ीं । बछड़े अनेक बार उन्हें चाट लेते हैं और उनकी खुरदरी जीभ कष्ट भी देती है । इसलिए वे बछड़ोंके मुखसे अपनेको दूर ही रखती हैं ।

सब हँस गयीं तो चिन्ताका गम्भीर वातावरण समाप्त हो गया । तब श्रीराधाने कहा—‘तुम सब अब जाओ । मैं ललितासे बात करूँगी । चन्द्रा जीजी आदेश दे गयी हैं और उसका आदेश तो मानना चाहिये । वह हम सबमें सबसे बड़ी हैं ।’

लड़कियोंका मन तो नहीं था वहाँसे हटनेका किन्तु अपनी इस सखीको वे फिर उदास होते नहीं देखना चाहती थीं । सब वहाँसे चली गयीं तो श्रीराधा फिर अत्यन्त गम्भीर हो गयीं । उन्होंने ललिताको अपने समीप ही बैठा लिया ।

‘ललिता ! तू मेरी प्राण है । तुझसे मैं कुछ छिपा नहीं सकती ।’ श्रीराधा अत्यन्त स्नेहसे कह रही थीं—‘किन्तु इस समय मैं जो कुछ कहने जा रही हूँ—उसे किसीसे भी कहना नहीं । तुझे मेरी शपथ है ।’

ललिताने अपनी हथेली उनके मुखपर रखदी—‘मैंने तुम्हारी बात कभी टाली है ? शपथ देना क्यों आवश्यक हुआ ?’

‘पहिले तू मेरी बात सुन ले ।’ श्रीराधाने कहा—‘स्वयं समझ लेगी कि यह क्यों आवश्यक है ।’

‘पहिले तुम यह बतला दो कि तुम गवाक्षके पाससे क्यों इस प्रकार उठ आयीं ? किससे रूठकर आयीं ? क्यों तुमने हम सबके लिए द्वार बन्द किया ? हमारा क्या अपराध है ? विशाखा फूट-फूटकर रोने लगी थी और मैं गिरने ही वाली थी । चन्द्रा जीजी न आ गयी होती तो ।’ ललिताकी हिचकियाँ बँध गयीं । उसने इस एकान्तमें उपालम्भ दिया—‘तुम जानती हो कि हम तुम्हारे चरणोंसे दूर नहीं रह सकतीं । तुम हमारे लिए अपना द्वार बन्द करलो तो हममें कोई दो घड़ी भी जीवित रहेगी ?’

‘अब तू और मत बोल !’ श्रीराधाने सखीको गलेसे लगा लिया और उनके कमलदृगोंसे अश्रुप्रवाह चलने लगा—‘तू जानती है कि तुम सबमें किसीको कुछ हो तो राधा अपने प्राण नहीं रखना चाहेगी ।’

‘यह सब मत कहो !’ ललिताने अपने पटुकेसे अश्रु पोंछते कहा—‘तुम दुःखी हो गयी हो, तुम्हें मेरी तत्काल आवश्यकता है, इसीसे तो ललिता रोयी भी नहीं । रो भी नहीं सकती थी । पर तुमने तो द्वार ही बन्द कर दिया था ।’

‘तो हो क्या गया था ? तूने पुकारा था ? तूने द्वार खड़काया था ? राधा तेरे पुकारने या द्वार खड़कानेपर द्वार बन्द रख सकती है ?’ श्रीराधाने सखीको गले लगाये हुए ही कहा—‘तू जानती तो है कि तेरी यह राधा पगली है । यह अनेक बार अपनेको ही भूल जाती है । तब तू भी इसे क्षमा नहीं करेगी तो कौन क्षमा करेगी ?’

‘फिर तुम यह सब कहने लगी हो ।’ ललिताने अपनेको सम्हाल लिया था । अब पृथक बैठते हुए उसने कहा—‘पर तुमको आज हो क्या गया था ?’

‘मुझे तो कुछ नहीं हुआ; किन्तु वनमें आज अवश्य कुछ अनहोनी हुई है ।’ श्रीराधा फिर बहुत गम्भीर हो गयी—‘लगता है, तूने बछड़े ध्यान देकर नहीं देखे ।’

‘तुमने देखने कहाँ दिया ।’ ललिता कुछ उलाहनेके स्वरमें बोली—‘तुमने तो बछड़े दीखते ही हम सबको छोड़ दिया और अकेली चल पड़ीं । आज उन मयूर—मुकुटकी एक झलक भी नहीं मिल सकी ।’

‘वे वनसे अकेले आवें और अपने अन्तरमें कोई वेदना दबाये दिखानेको हँसते-कूदते रहें तो उन्हें देखनेमें तुझे सुख मिलेगा ?’ श्रीराधाका कण्ठ भर आया ।

‘अकेले क्यों आवेंगे वे ?’ अब ललिता चौकी—‘उनके सब सखा और बछड़े तो साथ थे ।’

‘आज वे अकेले थे ।’ श्रीराधाने स्थिर स्वरमें कहा—‘न उनके कोई सखा साथ थे और न कोई बछड़ा था ।’

‘सम्भवतः हम सबको, सब ब्रजवासियोंको और गायोंको भी दुःखी देखना उनके वशमें नहीं है ।’ श्रीराधाके नेत्र टपकने लगे—‘कोई चिन्तित न हो, कोई व्याकुल न बने, इसलिए वे ही सब बछड़े, बालक, उनके वस्त्र, आभूषण, छड़ी-छीके, वेत्र-लकड़ सब बने हुए थे । आज वे एकाकी ही वनसे लौटे हैं ।’

‘वे एकाकी लौटे हैं ?’ ललिता नेत्र फाड़कर सखीकी ओर देखने लगी । वह जानती है कि उसकी यह भोली सखी न झूठ बोल सकती और न ऐसा निष्ठुर परिहास कर सकती । वह व्याकुल होकर बोली—‘वनमें आज क्या हुआ ? हमारे सुबलश्रीदाम भैयाका क्या हुआ ?’

‘तू घबड़ा मत !’ श्रीराधाने सखीका कन्धा थपथपाया—‘वनमें क्या हुआ, पता नहीं है; किन्तु एक बात पक्की है कि हमारे भाई और बछड़े जहाँ भी हों, सकुशल हैं, सानन्द हैं । वे साथ हों तो उनके जनोका, उनके आश्रितोंका रोम-स्पर्श करनेकी शक्ति भी तीनों लोकोंमें किसीमें कहीं नहीं है । उनके आश्रितोंका अमंगल करनेका मन करके जो कोई आया, उसकी उन्होंने क्या गति बनायी—तूने सुना है । आगे भी सदा सदा यही होगा । उनका स्वभाव परिवर्तित नहीं हो सकता ।’

‘तब ?’ ललिताको कुछ ठीक समझमें नहीं आया ।

‘कोई लीला हुई है । उनकी सहमतिसे हुई है या उसे उन्होंने किसी कारण स्वीकृति दे दी है । उनके अपनोंका कोई अमंगल न कभी हुआ, न आगे होनेवाला है ।’

‘तब तुम क्यों व्याकुल हो ?’ ललिताने पूछा ।

‘कारण कुछ भी हो, वे अपने सखाओंसे पृथक् पड़ गये हैं ।’ श्रीराधाने अपने अश्रु रोकनेका कोई प्रयास नहीं किया—‘उन्होंने स्वयं ऐसा किया हो या किसीके ऐसे प्रयत्नको स्वीकार कर लिया हो, ऊपरसे अपनेको चाहे जितना प्रसन्न और निश्चिन्त दिखला रहे हों, वे हृदयमें कितना अभाव—कितनी व्यथा अनुभव कर रहे होंगे ? इस समय उन्हें राधाके सामीप्यकी सबसे अधिक आवश्यकता है और विडम्बना यह है कि इस समय मैं किसी प्रकार उनसे मिलूँ भी तो बोलेंगे नहीं । इस समय अपने सखाओंके स्मरणको छोड़कर कुछ

सोच नहीं सकते । इस समय किसीपर—राधापर भी अचानक सक्रोध हो सकते हैं और कुछ भी कर सकते हैं । इस समय उनके समीप नहीं जाया जा सकता ।’

‘तूने अब तक ध्यान नहीं दिया’ श्रीराधाने दो क्षण रुककर कहा—
‘वनसे लौटकर सुबल दादा प्रतिदिन मेरे पास ही दौड़ा आता था । आज कोई आया अब तक ?’

‘मैं उसे बुला लाऊँ ?’ ललिताने पूछा ।

‘किसे ?’ श्रीराधाने जैसे झिड़की दी—‘वह कहाँ है, तुझे पता है ? जो आज सुबल-श्रीदाम बने हैं, उन्हें तू ‘दादा’ कह पावेगी ?’

‘अब सीधे बता दो कि मुझे क्या करना चाहिए ? ललिताने सखीके चरण छू लिए—‘मैं इतनी बुद्धिमान नहीं हूँ ।’

‘उनके अतिरिक्त सृष्टिमें कोई दूसरा तो कहीं है नहीं । वे ही सब जड़-चेतन बने हैं ।’ श्रीराधाका ऐश्वर्य इस एकान्त कक्षमें प्रबुद्ध हो गया था । इस समय वे श्रीवृषभानु बाबाकी भोली, नन्ही बालिका नहीं थी । वह नन्ही बालिका इस समय निखिल ब्रह्माण्डाधीश्वरी बन गयी थी—‘वे जहाँ जिस रूपमें होते हैं, उनके अनुरूप ही उनसे व्यवहार करना उचित होता है, यह उन्हींकी स्थापित मर्यादा है । सब जीव उनकी मर्यादाका पालन करके ही कृतार्थ होते हैं ।’

‘लेकिन आज विशेष परिस्थिति बन गयी है ।’ श्रीराधाने ही कुछ क्षण रुककर कहा—‘सृष्टिके सब चराचर प्राणी वे ही हैं; किन्तु मायाको स्वीकार करके, अज्ञानवश कर्तृत्वको अपना मानकर जीव बन गये हैं । अतः उनके साथ उनके रूपोंके अनुसार व्यवहार किया जा सकता है; परन्तु इस समय तो वे बालकों और बछड़ोंके रूपमें स्वयं हैं । केवल योग मायाका आश्रय लेकर तनिक रूप बदल लिया है । इन रूपोंका परिवर्तन तो रंगमंचपर आये नटके समान रूप-परिवर्तन है । मेरे नेत्रोंको यह रूप-परिवर्तन भ्रान्त नहीं करता । तब परिवर्तित रूपोंके अनुसार व्यवहार कैसे उचित हो सकता है ? ऐसा व्यवहार मैं कर भी कैसे पाऊँगी ।’

‘जब तक स्थिति सामान्य नहीं हो जाती, हमारे भाई और बछड़े लौट नहीं आते, तुम सब अपनी ओरसे किसी भी बालकके पास मत जाना । वे

स्वयं तुम सर्वोसे दूर-दूर रहेंगे ।' श्रीराधाने आदेश दिया, जो वे कदाचित ही कभी करती हैं—'बछड़ोंके पास गोष्ठमें जा सकती हो; किन्तु वे सब तुम सबको चाट-चाटकर रुला देंगे । सिरसे धक्का मारकर या ठेलकर गिरा भी दे सकते हैं ।'

'मैं उनके पास नहीं जाऊँगी ।' ललिताने मुँह बनाया—'उनको ऐसा अवसर नहीं मिलेगा कि मुझे अपनी खुरदरी जीभसे चाटें या गिराकर फुदकते फिरें ।'

'यह सब कब तक चलेगा ?' ललिताने कहा—'यदि देर तक चला और रक्षा-बन्धन आ गया तो ?'

तो क्या तुझे रूठना नहीं आता ?' श्रीराधाने हँसकर कहा—'हम कह देंगी कि सब बालक बुरे बन गये हैं । इतने दिनोंसे उन्हें किसीकी सुधि ही नहीं आयी । अब हम भी किसीको न रक्षा बाँधेंगी और न भ्रातृ-द्वितीयाको कुछ खिलावेंगी । वे सब भी हठ नहीं करेंगे । वे भी रूठनेका नाटक करके वनमें चले जाया करेंगे ।'

'वे तो कह सकते हैं' ललिताने शंका की—'हम नन्दगाँवकी बहिनोसे रक्षाबन्धन करा लेंगे । उन्हींके यहाँ भ्रातृ-द्वितीया भी मना लेंगे ।'

'तू ठीक कहती है । वे ऐसा ही कुछ कहेंगे और करेंगे भी; किन्तु इसमें तुझे क्या आपत्ति है ?'

ललिताको इसमें क्या आपत्ति होनी थी ।

'तू मेरा एक काम कर दे !' श्रीराधाने बहुत अनुरोध भरा स्वर बनाकर कहा—'शीघ्र भवनमें जा और किसी भी बालकका कोई वस्त्र, छीका, छड़ी, माला आदि कोई वस्तु जो आज उसके साथ वनसे आयी हो, चुपचाप उठा ला । कोई एक वस्तु पर्याप्त है । लेकिन शीघ्र जा । अन्यथा वे सब उन वस्तुओंको छिपा देंगे या अपने पास ही लिये फिरेंगे । मांगनेपर भी तुझे कोई एक पुष्प भी नहीं देंगे ।'

'अच्छा, तो अब तुम उनके वस्त्र पहिनकर, लकुट लेकर बछड़े चराने जाओगी ?' ललिताने खिलखिलाकर हँसते हुए तनिक परिहास किया—'हम

सबोंको साथ चलनेकी आज्ञा राजकुमारीकी है या नहीं । अथवा वे एकाकिनी अभिसार करेंगी ?'

'तू मुझे चिढ़ावेगी ?' श्रीराधाने भी क्रोधका अभिनय किया— 'बातें बनावेगी या झट-पट जायेगी ? पहिले ही बहुत देर हो चुकी है ।'

'हम सबोंको साथ चलना हो तो आप ऐसे ही साथ चलोगी या हम सबको बालकोंके समान कछनी बांधनी पड़ेगी ? मैं उसका भी प्रबन्ध करूँ ?'

'ललिता !' श्रीराधाने आक्रोश भरे स्वरमें पुकारा ।

ललिता हँसती हुई प्रायः भागती कक्षसे निकल गयी । उसे अभी बहुत काम था । अपनी सब सखियोंको श्रीराधाका आदेश बिना पूरा विवरण सुनाये देना था ।

सब प्रतीक्षा ही कर रही थीं । कक्षसे निकलते ही सबने ललिताको घेर लिया । ललिताने भी युक्ति निकाल ली । उसने कहा— 'राजनन्दिनी सब बालकोंसे बहुत रुष्ट हैं । सबके सब बहुत बुरे हैं, उनमें एक भी आज मिलने नहीं आया । अतः उन्होंने कहा है कि उनकी जो भी सखी-सेविका किसी भी बालकसे मिले या बोलेगी, उसकी वे चरण-वन्दना भले कर लें, उसे कोई सेवा नहीं करने देंगी ।'

बालिकाओंके लिए इतना सन्देश पर्याप्त था । उनमें अनेकोंने अंगूठा दिखाया— 'सचमुच सब बड़े घमण्डी और बुरे हैं । उनसे बोले हमारा ठेंगा । हमारी राजनन्दिनी हमपर सन्तुष्ट रहें—और हमें किसीसे क्या लेना-देना है ।'

सबने उसी समय निश्चय कर लिया कि वे गोष्ठमें भी नहीं जायेंगी । उन्हें बछड़े गिरावें या चाटें, इसकी कोई अत्सुकता नहीं थी ।

श्रीराधाने एक साथ अपनी सब सखियोंकी समस्या सुलझा दी थी । उनके सामने न कोई समस्या आयी, न उस दिनके पीछे कोई प्रातः या सायं बछड़े या उन्हें चरानेवालोंको देखने छज्जेपर पहुँची । वे सब तो श्रीराधाके साथ जाती थीं । जब वे ही नहीं जातीं तो बालिकाएँ क्यों जाने लगी थीं । वे अपनी सखी श्रीराजनन्दिनीकी सेवा-सामीप्यमें पूर्ण सन्तुष्ट थीं ।

• • •

चन्द्रावली हार गयी

‘अभी सबको मना करदे ! कोई भूलकर भी गोष्ठोंमें न जाय !’ चन्द्रावलीने श्रीराधासे कहा—‘पहिले सबको मनाकर ! मैं तो अपनी बात बताने ही आयी हूँ ।’

‘वह तो मैं मना कर चुकी हूँ ।’ श्रीराधाने अपनी ओढ़नीसे ही चन्द्रावलीका मुख पोंछते-पोंछते कहा—“लेकिन जीजी; तुमको क्या हुआ ?”

चन्द्रावलीकी दशा देखकर अनेक बालिकाएँ मुख छिपाकर हँस रही थीं । सब बालिकाएँ ही थीं, उनके हँसनेका चन्द्रावलीने बुरा नहीं माना । उलटे स्वयं हँसकर कहा—‘तुम सब खुलकर क्यों नहीं हँसती हो । कोई गोबर-गोमूत्रमें लिथड़ी भूतनी बनी आवेगी तो उसे देखकर हम सब हँसेंगी नहीं तो क्या मुख लटकावेंगी ।’

सचमुच चन्द्रावली लगभग सिरसे पैर तक गोबर-गोमूत्रमें लिथड़ी थी । उसके सिरके केश भी चिपके, अस्त-व्यस्त थे और उसका मुख तो जैसे पूरा छिला धरा था । मस्तक, ललाट, नासिका, कपोल, कण्ठ और दोनों कर, शरीरका जो भाग भी वस्त्रसे नहीं ढँका था, ऐसा हो रहा था जैसे उससे रक्त टपकने ही वाला हो ।

‘राधा ! तू इन सबको संकेतसे नेत्र कड़े करके क्यों डाँट रही है ?’ चन्द्रावलीने श्रीराधाका कर पकड़ा—‘तुझे मेरी दशा देखकर हँसी नहीं आती तो इन सबको तो हँस लेने दो । तुझे तो किसीको भूतनी बनी देखकर कभी हँसी नहीं आवेगी । तुझे तो एक ही काम आता है—रोना । लेकिन इस समय मेरी दशापर रोनै बैठेगी तो मुझे रोष आवेगा । तू तनिक हँस तो बहिन !’

‘जीजी ! तुमने ऐसा रूप क्यों बनाया ? तुम्हारे साथ धृष्टता करनेका साहस तो कोई कर नहीं सकती । तुमको हुआ क्या है ?’ श्रीराधाका मुख अरुण हो आया था । उनको रोष आया है, यह उन्होंने छिपाया नहीं । बालिकाएँ संकोच और भयसे स्तब्ध रह गयीं ।

‘तुम सब बैठी रहोगी या मेरी सेवा करोगी !’ चन्द्रावलीने ही कहा—‘मुझे स्नान कराओ, मेरे वस्त्र परिवर्तित करो । इस वेशमें अपने सदन भी

नहीं जा सकती । मेरी छोटी बहिनकी बहुत सेवा करती हो, मेरी सेवा करो तो देखूँ कि तुम सबको सेवा करना आता भी है या नहीं ।’

‘जीजी, क्षमा करना ।’ श्रीराधा उठ खड़ी हुई—‘मुझसे अपराध हुआ । मुझे पहिले सेवा करनी थी और मैं प्रश्न पर प्रश्न करने लगी ।’

‘यदि तू चुप बैठी नहीं रहेगी तो मैं तेरे सदनसे अभी ऐसी ही चली जाऊँगी ।’ चन्द्रावलीने श्रीराधाके दोनों कर पकड़कर घूम लिये—‘ये कर सेवा करने योग्य हैं ?’ तू सेवा लेनेके लिए है । सेवा तो तुझसे वह बनमाली भी लेनेका साहस नहीं करेगा ।’

‘जीजी ! तुम मुझे चिढ़ा भले लो; किन्तु ।’ श्रीराधाको अपनी बात पूरी करनेका अवसर नहीं मिला ।

‘किन्तु अपनी सेवा करनेका सौभाग्य दो—क्यों ?’ चन्द्रावलीने कहा—‘तू बुढ़िया नहीं हो गयी है । बच्ची है, अतः अभी तेरी सेवा करना मेरा कर्तव्य है । लेकिन मेरी रुचि ही सेवा करनेमें नहीं है । तू बैठ और मुझे स्नान कर लेने दे ।’

बालिकाएँ सब प्रसन्न होकर जुट पड़ीं । उन्होंने घरकी किसी दासीको नहीं बुलाया । नर्हीं बालिकाएँ, उनके नन्हें कर; किन्तु सबने मिल-मिलाकर चन्द्रावलीको रगड़-रगड़कर भली प्रकार स्नान करा दिया । सब उत्साहमें थीं । श्रीराधातो उनसे इस प्रकार सेवा लेती नहीं हैं । उन्मुक्त सेवाका उन्हें यह प्रथम अवसर मिला था ।

न चन्द्रावली चाहती थी; न बालिकाएँ ही कि उनको उस गोबर-स्नाताके रूपमें कोई देखे । बालिकाओंको चन्द्रावली प्रोत्साहित करती जाती थी; उन्हें बीच-बीचमें चिढ़ाती भी जाती थी और कभी-कभी रोकती-टोकती भी थी—‘तू देखती नहीं कि मेरे कपोल पूरे छिल गये हैं । बहुत धीरे इन्हें स्वच्छ कर !’

‘जीजी ! यह किसने किया है ?’ एकने हँसकर पूछ लिया ।

‘तेरे जीजाजी लोगोंने ।’ चन्द्रावली खुलकर हँसी—‘तुझे भी ऐसी बननी हो तो तू भी गोष्ठमें चली जा । उन सबको तुझे भी घूमने-चाटनेमें कोई संकोच नहीं होगा और न वे तेरी चीख-पुकार सुनकर माननेवाले हैं ।’

‘कौन हैं वे ?’ किसी दूसरीने पूछा ।

‘पता बतला दिया है ।’ चन्द्रावली हँसती जा रही थी—‘पूछकर दर्द नहीं मिलता । जाकर उसे लेना पड़ता है ।’

‘मुझे कोई दर्द नहीं चाहिये ।’ वह बालिका भी हँसकर बोली ।

‘तू थोड़ी और बड़ी हो जा ।’ चन्द्रावलीको हतप्रभ होना नहीं आता—‘फिर देखूँगी कि तू दर्द मोल लेनेको कैसे बेचैन नहीं होती ।’

बालिकाओंने चन्द्रावलीको उबटन लगाकर फिर स्नान करा दिया गोबर स्वच्छ करनेके पश्चात्, उनका शरीर पोंछकर सुन्दर कौशेय वस्त्र पहिनाये और छिले मुख, ललाट, कन्धे, कंठ पर औषधीय तेल लगाया । तब उन्हें कक्षमें लाकर आसनपर बैठा दिया और सब अंगराग लगाने, पैरोंमें अलक्तक सजाने, केशोंमें कंधी करने, सुमन गुच्छ सजानेमें लग गयीं ।

‘तेरी सखियाँ तो मेरा इस प्रकार शृंगार करनेमें लगी हैं, जैसे आज मेरा विवाह ही करके मानेंगी ।’ चन्द्रावलीने कक्षमें आते ही श्रीराधाका कर पकड़कर उन्हें समीप बैठा लिया था । अब बात करना सरल हो गया था ।

‘जीजी, तुम तो अपने आप विवाह करनेवाली हो ?’ श्रीराधाने किञ्चित् स्मितपूर्वक कहा ।

‘वही करने तो गयी थी ।’ खुलकर चन्द्रावली हँसी—‘मेरे कपोल नहीं देखती है कि उनकी क्या गति हो गयी है ? ना बाबा—मैं हार गयी । मैं समझ गयी कि उसे राधासे विवाह करनेकी धुन है । मैं तो तेरे साथ लग जाऊँगी । तब मुझसे कोई धृष्टता नहीं करेगा ।’

‘कहाँ गयी थीं आप ?’ श्रीराधाने चौंककर सिर उठाया और आश्चर्यसे चन्द्रावलीकी ओर देखने लगी—‘उन्होंने तुम्हारे साथ कोई धृष्टता की ?’

‘गोष्ठमें गयी थी । तेरे यहाँसे सीधे गोष्ठमें गयी ।’ चन्द्रावलीने हँसकर कहा—‘मेरे साथ धृष्टता की या नहीं, यह मेरे कपोल देखकर भी तुझे पता नहीं लगता ?’

‘तुमको वे गोष्ठमें मिले थे ?’ श्रीराधा बहुत अधिक गम्भीर हो गयी—‘वे आज हमारे गोष्ठमें आ गये थे ? इस समय तो अपने गोष्ठमें जाया करते हैं?’

‘अब तू पिटेगी ।’ चन्द्रावली हँस रही थी—‘तू गवाक्षसे क्या देखकर लौटी थी, मुझसे भी छिपावेगी ? गोष्ठोंमें आज कोई और भी है तो केवल गायें और नवजात बछड़े हैं, यह तुझे पता तो है ?’

‘जीजी ! अब बता ही दो कि गोष्ठमें क्या हुआ ?’ श्रीराधाने बहुत उत्सुक होकर पूछा ।

‘होना क्या था’ चन्द्रावलीने कहा—‘वनसे लौटे सब बछड़े मेरे पास दौड़ आये । मैं सम्हल सकूँ, इससे पहिले सबोंने मुझे सिरोंसे ठेल-ठालकर गिरा दिया । कोई मेरे पेटमें सिर लगाकर हिलाने लगा और सब मुझे चाटने लगे । मेरा सिर, ललाट, कपोल, नासिका, कन्धे, हाथ, पैर—जो जिसके मुखके सामने पड़ा, उसी अंगको चाटने लगा । बड़ी कठिनाईसे किसी प्रकार उन सबोंको ठेल-ठेलकर गोष्ठसे भागी । पूँछ उठाकर कूदते-फुदकते सबोंने द्वारतक मेरा पीछा किया । मैंने गोष्ठ द्वार न बन्द किया होता तो सब यहाँ तक आ जाते ।’

‘गोष्ठमें कोई था नहीं ?’ श्रीराधाने अब हँसकर कहा—‘बछड़े तो अपना स्नेह इसी प्रकार प्रकट कर सकते थे ।’

‘गोष्ठमें गायें थीं । मुझे पता नहीं कि कोई गोप थे या नहीं ।’ चन्द्रावलीने कहा—‘मुझे वें कुछ देखने दे रहे थे । कई तो मेरा मुख चाटनेमें जुट गये थे । मेरे कान तक तो सबोंने बिना चाटे छोड़े नहीं ।’

‘जीजी, तुम गोष्ठमें क्या करने गयी थीं ?’ श्रीराधाने उत्सुक होकर पूछा ।

‘तुझसे तो कहकर ही गयी थी कि वह मुझे किसी रूपमें मिल जाय तो उससे बलात् ब्याह कर लूँगी ।’ चन्द्रावलीने हँसकर कहा—‘ब्याह करने ही गयी थी । वह मुझे अकेले कभी मिलता नहीं । कभी सखा उसे घेरे रहते हैं, कभी बछड़े या उसके घर की बड़ी-बूढ़ियाँ । आज वह इस प्रकार इतने रूपोंमें अपने यहाँ आया तो मैंने सोचा कि गोष्ठमें उसे एकाकी पकड़ लूँगी ।’

‘इसीलिये तो…………’ श्रीराधा हँसकर फिर गम्भीर हो गयीं ।

‘इसीलिये सब मुझसे चिपट गये । मुझे गिरा दिया और चाटने लगे ?’ चन्द्रावलीने कहा—‘मैं तो समझती थी कि किसी बछड़ेके कण्ठकी पुष्पमाला

गिरी होगी तो उसे उठा लूँगी या कण्ठसे ही पुष्पमाल्य झटक लूँगी ।’

‘वह भी आपको नहीं मिली ?’ श्रीराधाके नेत्रोंमें आश्चर्यकी चमक आयी ।

‘वह होती तो मुझे मिलती ।’ चन्द्रावलीने बतलाया—‘मैंने गोष्ठ-द्वार-से पहिले देखा कि कहीं किसी बछड़ेके कण्ठसे पुष्पमाल्य या पुष्प गिरा है, न किसीके कण्ठमें कोई सुमनमाला थी और न कहीं कोई पुष्प गिरा था । मैं गोष्ठमें भीतर देखने ही गयी कि कदाचित् कोई पुष्प पा सकूँ ।’

‘मैंने व्यर्थ ही बेचारी ललिताको हैरान किया ।’ श्रीराधाने जैसे अपने आपसे ही कहा ।

‘ललिता कहाँ हैं ? कहाँ भेजा तूने उसे ?’ चन्द्रावलीने कुछ आकुल स्वरमें पूछा—‘वह गोष्ठमें तो नहीं गयी ?’

‘गोष्ठमें जानेको तो मैंने सबको मना कर दिया था ।’ श्रीराधाने तनिक संकोच पूर्वक बतलाया—‘मैंने उसे भवनमें भेजा है ।’

‘क्यों ?’ अब चन्द्रावलीके स्वरमें आश्चर्य था । यह राधा उससे छोटी है, बहुत भोली है; किन्तु उससे बुद्धिमती है । आज तो इसने अपने चातुर्यसे पराजित ही कर दिया है । अन्ततः इसीकी भाँति चन्द्रावली भी तो अपनी कोई सखी भेज सकती थी । स्वयं गोष्ठमें जानेकी उतावली करके क्या लाभ मिला उसे ?

‘जीजी ! तुम मुझे क्षमा कर दो !’ श्रीराधाका मुख लज्जासे अत्यन्त अरुणाभ हो उठा । बड़े संकोचसे वे बोलीं—‘किसी गोप बालकका आज वनसे आया छीका, लकुट, पटुका, माला—कुछ भी मिल जाय तो उसे ले आने मैंने ललितासे अनुरोध किया ।’

‘उसे कुछ नहीं मिलेगा !’ चन्द्रावलीने गम्भीर स्वरमें कहा—‘बछड़ोंके कण्ठकी मालाके समान ये वस्तुएँ भी अदृश्य हो गयी होंगी या बछड़ोंके कण्ठकी घंटियाँ, रत्नमालाओंके समान सब बालक अपनी इन वस्तुओंको अपने साथ ही लिये रहेंगे । वे मांगनेपर भी किसीको नहीं देंगे ।’

‘उनमे कोई मांग भी कैसे सकती है ।’ श्रीराधाने बहुत खिन्न स्वरमें

कहा । उन्हें भी लगा कि चन्द्रावलीकी बात ही ठीक है ।

‘मांग तो मैं लूँगी ।’ चन्द्रावलीने कहा और उठने लगी ।

‘जीजी, तुम यह नहीं करोगी ।’ श्रीराधाने उसे हाथ पकड़कर बैठा लिया—‘वे सब तुम्हें चिढ़ावेंगे और कुछ नहीं देंगे ।’

‘तेरी बात ठीक लगती है ।’ चन्द्रावलीने कहा—‘आज गोष्ठमें जाकर मैं हार गयी । वह केवल नटखट ही नहीं है । उसे जाने क्या-क्या आता है और देखनेमें ही दुर्बल लगता है । बछड़ोंकी जीभ कितनी खुरदरी होती है, मैं जान गयी हूँ ।’

चन्द्रावलीने श्रीराधाके आग्रहसे उनके साथ भोजन करना स्वीकार कर लिया । अब रात्रिका प्रथम प्रहर व्यतीत होनेवाला था । सूर्यास्तके कुछ पीछे तो वह गोष्ठमें ही पहुँची थी । वह ललिताके लौट आनेकी प्रतीक्षा कर रही थी ।

चन्द्रावली चाहे जितनी मुंहफट, विदग्धा और निःसंकोच हो, उसे कुछ छिपाना नहीं आता था । उसने श्रीराधासे स्पष्ट कहा—‘मैं तेरे पास रुकी हूँ, ललिताके लौटनेकी प्रतीक्षा करती ।’

‘क्यों ? ललिता कौन-सा तीर मारनेवाली है जो मेरी यह जीजी नहीं कर सकी ?’ श्रीराधाने दोनों भुजाएं चन्द्रावलीके कण्ठमें डाल दीं ।

‘मैं तुझे संकुचित करना नहीं चाहती ।’ चन्द्रावलीने भी स्नेह विगलित स्वरमें कहा—‘लेकिन तू इतनी भोली है कि यह समझ ही नहीं पाती कि मयूर-मुकुटीको तेरे अतिरिक्त कोई और प्रसन्न नहीं कर सकती । तेरी सखी तेरे लिए कुछ लेने गयी है तो वह मेरे समान गोबरपुती नहीं आवेगी और न खाली हाथ आवेगी ।’

सचमुच उस समय ललिता लौटी तो उसके करोंमें एक अतिशय सुन्दर माला थी—वनमाला । उसने कुछ खिन्न स्वरमें ही कहा—‘मैं बहुत भटकती फिरी हूँ । किसी बालकका कोई पटुका या लकुट नहीं पा सकी । सब मुझे देखते ही अँगूठा नचाकर चिढ़ाने लगते थे । आज सब बुरे बन गये हैं । इनमें किसीसे हमसब नहीं बोलेंगी ।’

‘वे भी तुझसे बोलनेको लालायित तो नहीं होंगे ।’ श्रीराधाने उसके करसे बद्ध बनमाला ले ली और स्नेहसे उसका हाथ पकड़ा—‘तू इतनी सुन्दर माला तो ले आयी है । कहाँ मिली यह तुझे ?’

‘कहाँ मिली, किसने दी, यह मुझे पता नहीं है ।’ ललिताने बतलाया—‘मैं पूरे बरसानेके घरोंमें घूम आयी । सबको उनकी माताएँ स्नान कराने, खिलाने या लाड़ करनेमें ऐसी लगी हैं कि आज किसी ताई या चाचीको ललिताकी ओर देखनेका ही ध्यान नहीं है और ऊपरसे वे सबके-सब नटखट बन गये हैं । अँगूठा दिखाते हैं या मुँह बनाते हैं ।’

ललिता बहुत रुष्ट लौटी थी; किन्तु उसकी लायी माला श्रीराधाको प्रिय लगी, यह देखकर वह प्रसन्न हो गयी थी । उसका रोष मिट गया था । उसने बतलाया—‘मैं लौट रही थी तो तुम्हारे इस सदनके द्वारपर पहुँचनेपर किसीने पीछेसे आकर माला ऐसे फेंकी कि यह आकर मेरे उठे हाथमें उलझ गयी । वह तो भागकर अँधेरेमें छिप गया । मैं केवल यह देख सकी कि कोई मुझसे कुछ ही बड़ा बालक है ।’

‘जीजी ! तुम इसे पहिनो तो सही ।’ श्रीराधाने दोनों करोंमें माला उठायी ।

‘यह यहाँ सबसे सुन्दर लगेगी ।’ चन्द्रावलीने उनके दोनों कर पकड़कर माला उनके कण्ठमें ही डाल दी; किन्तु उससे एक सुमन निकालकर उसे चूमा, वक्ष से लगाया और बोली—‘राधा ! बहिन ! मैं एक पुष्प इस मालाका लिये जाती हूँ । तू इसे कह दे कि यह अदृश्य न हो जाय ।’

‘जब तक यह माला अदृश्य न हो, अकेला कैसे अदृश्य हो सकता है ।’ श्रीराधाने मालाको एक हाथसे अपने हृदयसे लगा लिया ।



मैयाकी उलझन

‘आप बतलाओ कि मैं क्या करूँ ?’ सबरे उठते ही मैया यशोदा प्रतिदिन अपने लाड़िलेकी मनुहार करके उसे जगाती है। मुख धुलाती है। कलेऊ कराती है। इस सबसे पहिले कन्हाईके वस्त्र, लकुट आदि ठीक देखकर सम्हालती है; क्योंकि उसका नीलमणि एक तो जगानेपर भी ‘ऊँ ऊँ’, करके करबट लेकर बार-बार सो जाता है और उठनेपर सब कामोंमें हड़बड़ी करता है। वह ठीक मुख भी नहीं धुलाता और कलेऊके नामपर मुख भी कठिनाईसे जूठा करता है।

गायें रँभाने लगी और वह लकुट-पटुका लेनेको मधलने लगता है। बछड़े द्वारपर भाग आते हैं, और गोप बालक उसे पुकारते ही आते हैं। वह भी सखाओंके आनेपर दो क्षण भी रुकना नहीं चाहता। अतएव मैयाको बहुत शीघ्रता करनी पड़ती है।

आज यह कुछ नहीं हुआ था। बछड़े अभी गोष्ठमें ही थे और गायें भी चुप थीं। कोई गोप बालक भी आया नहीं था। क्यों ऐसा नहीं हुआ, इधर मैयाने ध्यान नहीं दिया। उसे यह सब अच्छा लगा; किन्तु उसे अपने पर खीझ आयी।

मैया आज अपने नीलमणिका पटुका, लकुट आदि सम्हालनेमें लगी तो उसे स्मरण आया कि कल भद्र भवनमें नहीं आया और अब तक भी भीतर नहीं आया है। भद्र रात्रिमें तो श्रीब्रजराजके समीप दाऊके साथ सोने लगा है; किन्तु इतनी देर तक तो वह सोया नहीं करता। उसे पुकारने मैया गोष्ठ गयी तो एक बछड़ा मैयाको सूँघने आ गया। मैयाने उसे गोदमें खींचा और सहलाने लगी। उसे भूल ही गयी कि वह गोष्ठमें क्या करने आयी है। वह बछड़ेको सहला रही थी और उसके वक्षसे दूध टपक रहा था।

‘मैया !’ दाऊ न पुकारता तो मैया सावधान होती भी या नहीं, पता नहीं। दाऊने उसका हाथ पकड़कर झकझोरा—‘कन्हाई उठ गया है। माँ ने उसका मुख धुला दिया है। तू चलकर हम दोनोंको और भद्रको कलेऊ दे ! अब वनमें बछड़े ले जानेको देर हो रही है।’

‘भद्र है कहाँ ?’ चौककर मैयाने पूछा । इस अवसरका लाभ उठाकर मैयाकी गोदमें मुछा रखे, आँखे बन्द किए चुपचाप खड़ा बछड़ा कूदकर दूर चला गया ।

‘बह तो भवनमें कन्हाईके पास है ।’ दाऊने बतलाया—‘माँ वहाँ तुझको बुला रही हैं ।’

मैया भवनमें लौट आयी और उसने बालकोंको कलेऊ कराया ।

‘आज तुम्हारे सखा क्यों नहीं आये ?’ माँ रोहिणीने पूछा । दाऊ दादाको भी यह बात विचित्र लग रही थी । कल शाम भी कोई सखा वनसे लौटनेपर यहाँ नहीं आये थे । पहिले तो ऐसा कभी हुआ नहीं था ।

‘मैंने कल पहिले अपने बछड़े हाँक दिये थे । अब सब मेरे समान ही अपने बछड़े हाँककर मार्गमें मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।’ कन्हाईने कहा—‘मैंने जैसे शृंग बजाकर कल उन्हें पुकारा था, आज सब शृंग बजाकर मुझे पुकार रहे हैं ।’

मार्गकी ओरसे तुमुल शृंग ध्वनि आ रही थी, अतः कन्हाईकी बातपर सन्देह करनेका कोई कारण नहीं था । तीनों बालकोंने झटपट कलेऊ कर लिया ।

‘लाल ! तेरा लकुट मुझे मिल नहीं रहा है ।’ मैयाने भद्रसे कहा—‘आज तू दूसरा लकुट ले ले ।’

मैयाको कैसे पता हो सकता था कि ब्रजके सभी बालकोंको आज अपने घरोंसे नवीन लकुट, वेत्र, शृंग-छीके लेने पड़े । वस्त्र तो प्रतिदिन परिवर्तित होते ही थे; किन्तु कल सायंकाल जो वस्त्र, लकुट, छीके, आभूषण आदि बालकोंके साथ आया था, सब अदृश्य हो चुका था । किसीने इसपर ध्यान नहीं दिया । प्रातः सब घरोंमें लकुट आदिकी खोज हुई; किन्तु कोई विशेष चर्चा इसे लेकर नहीं हुई । सबने यही माना कि भूलसे बालकोंके लकुट आदि कहीं किसी सेवक या सेविकाने इधर-उधर रख दिये हैं ।

बालकोंने नवीन वस्त्र, आभूषण, लकुट आदि लेनेमें तनिक भी आनाकानी नहीं की । उन्हें फिर इन उपकरणोंका स्मरण न आना था, न आया । ब्रजके लोगोंको भी यह स्मरण फिर नहीं आया । बालक या बछड़ोंमें किसीके

दीखनेपर उन्हें अपनी सुध-बुध भूल जाती थी । लकट-छीके तो स्मरण किसे रहने थे ।

‘जीजी, मुझे कुछ हो गया है ।’ दाऊ-कन्हाई बछड़े लेकर वनमें चले गये, तब मैया चौंकी । वह प्रतिदिनके समान आज भी देर तक पौरिके समीप खड़ी दूर जाते बालकों, बछड़ोंको देखती रही थी । सब जब नेत्रोंसे ओझल हो गये, जब उनके पैरोंसे उठती धूलिका दीखना भी बन्द हो गया, तब मैयाने दीर्घश्वास ली । वह ऐसे लौटी—सदा ऐसे ही लौटती है जैसे उसके बालक पता नहीं कितने वर्षोंके लिए उससे वियुक्त हुए हैं ।

आज पौरिके भवनमें मैया माता रोहिणीके साथ ही लौटी । प्रतिदिनके समान न गोपियाँ आज प्रातःकाल भवनमें आयी थीं और न बालिकाएँ ही । केवल भवनकी दासियाँ ही वहाँ थीं ।

‘मैं आज नीलमणिको ही भूल गयी !’ मैयाने भवनमें लौटकर माँ रोहिणीके समीप बैठकर कहा—‘गोष्ठमें वह बछड़ा मेरे समीप आया तो मुझे लगा कि वही मेरा नीलमणि है । मैं उसे ही अंकसे लगाकर ऐसी हो गयी कि मुझे स्मरण नहीं रहा कि नीलमणिको जगाना और कलोज़ कराना है । अब भी वह बछड़ा मुझे बहुत स्मरण आ रहा है ।’

‘तुमको तो सब बालक सदासे नीलमणि लगते रहे हैं ।’ माँके श्रीमुखपर स्मित आया—‘अब बछड़े भी नीलमणि लगने लगे हैं । कलको मैं, गोपियाँ, गोप और सेवकादि भी नीलमणि लगने लगे तो हम सबका सौभाग्य । मैंने महर्षि गर्गाचार्यसे सुना है कि महापुरुषोंको सब नारायण ही दीखते हैं ।’

‘जीजी ! आप तो मुझ गँवार ग्वालिनीको धिक्काओ मत !’ मैयाने हाथमें अञ्चल लेकर माँके चरणोंपर सिर रख दिया—‘आपकी चरणरज पड़ी महरके भवनमें, तो मुझ अभागिनी बाँझकी गोदमें नीलमणि आया । बह सकुशल रहे, मुझे और कुछ बनना नहीं है ।’

‘मैं कहाँ तुमको कुछ बना रही हूँ ।’ माँ ने मैयाको कण्ठसे लगाया—‘अपनी मैयाको जो बनाना होगा, वह नीलमणि बना लेगा ।’

‘वह तो मुझे पगली और चकरधित्री बनाये ही रहता है ।’ मैया भी हँस गयी—‘लेकिन मैं आज उसीको भूल गयी, यह अच्छा नहीं लगता है ।’

गोपियाँ सुनेंगी तो क्या कहेंगी ?'

'गोपियाँ हैं कहाँ ?' अब माँ रोहिणीका ध्यान इस ओर गया—'कल सायंकालसे कोई आयी नहीं है । कोई बालिका भी नहीं आयी । सबको बड़े सबेरेसे रात तक तो यहीं घूमते रहना भाता था, आज एक साथ सबको क्या हो गया ?'

'मुझसे कोई अपराध हुआ ?' मैया भी चौंकी और सहसा उसके नेत्र भर आये—'सबकी सब मुझसे रूठ गयी हैं ? कोई नीलमणिको देखने भी आज नहीं आयी ।'

'तुमसे कोई रूठेगी नहीं ।' माँने आश्वासन दिया—'कोई रुठेगी भी तो मैं मना लूँगी । श्रीब्रजराजको भेजना होगा कि अपने किसी छोटे भाईको तनिक बुला दें ।'

'लेकिन महर कहाँ हैं ?' मैया चौंक कर उठी—'वे भी आज अब तक भवनमें नहीं आये हैं । प्रातः उन्होंने सेवकोंके द्वारा गायोंका दूध भिजवा दिया था । मैं गोष्ठमें गयी तो उस बछड़ेके कारण भूल ही गयी कि महर वहाँ क्या कर रहे हैं, यह देखती चलूँ । आज गोष्ठमें भी कोई गोप उसके समीप आये नहीं लगते थे ।'

मैया गोष्ठमें गयी । बाबा वहाँ एक नन्हेसे गोबरके टुकड़े—बछड़ेके गोबरके समीप चुपचाप बैठे थे । उनका पूरा शरीर बार-बार काँप रहा था । एक-एक रोम उठा था । मैयाने यह देखा तो भवनमें लौटी और एक मोटा कम्बल ले आयी । बाबाको कम्बलसे भली प्रकार ढककर तब उनका शरीर डरते-डरते उसने स्पर्श किया । उसने देखा ही नहीं कि उनके शरीरसे स्वेदकी धारा भी चल रही है ।

'महर ! तुमको क्या हुआ है ?' मैयाने धीरेसे हिलाया—'तुमको शीत लग रहा है ? तुम इतना क्यों रो रहे हो ? तुम्हें कहाँ पीड़ा है ? उठो, भीतर भवनमें चलकर लेट रहो । मैं तुम्हारे बड़े भाईको बुलवाती हूँ । वे अवश्य कोई उपचार बतलावेंगे ।'

'नीलमणि !' बाबाने नेत्र खोले । उनके नेत्र लाल हो रहे थे । उन्होंने इधर-उधर देखा । मैयाको समीप देखकर बोले—'नीलमणि कहाँ है ?' सम्भवतः

मैयाकी कोई बात वे सुन ही नहीं सके थे ।

‘वह तो बछड़े लेकर दाऊ और भद्रके साथ वनमें चला गया ।’

मैयाने कहा—‘तुम यहाँ ऐसे क्यों बैठे हो ? तुम्हारा जी कैसा है ? भवनमें चलो ।’

‘मुझे क्या हुआ है ।’ बाबाने अपने शरीर पर-से कम्बल उतारकर उसे तह करके मैयाको पकड़ा दिया—‘इसे तुम ले चलो । नीलमणि यहीं तो था । मैं उसे अंकमें लेकर बैठा तो अपनेको ही भूल गया ।’

‘नीलमणि तो आज गोष्ठमें आया ही नहीं ।’ मैया अब चौंकी—‘मैं उसे सोते ही छोड़कर गोष्ठमें आयी और एक बछड़ा मेरे पास आया तो उसे अंकसे सटाकर अपनेको भूल गयी । मुझे तो दाऊने आकर सावधान किया था । कहीं तुमने भी तो कोई बछड़ा ही नहीं पकड़ा था ?’

‘तुम ठीक कहती हो महर !’ अब बाबाने जैसे कुछ स्मरण करते कहा—‘मैं यमुनाजीसे लौटा और अपना नित्यकर्म करके उठा तो एक बछड़ा मुझे आकर सूँघने लगा । मैं उसे सहलाने बैठा । मुझे लगा कि नीलमणि मेरे अंकमें है । यह उसी बछड़ेका गोबर लगता है ।’

‘तुम महर्षि शाण्डिल्यके पास चले जाओ !’ मैयाने कुछ सोचकर कहा । अब बाबाके अस्वस्थ होनेकी आशंका मिट जानेसे वह बहुत कुछ निश्चिन्त हो गयी थी । ‘हमारे बछड़ोंको कुछ हुआ है या तुमको और मुझे कुछ हो गया है, यह मेरी समझमें तो आता नहीं है ।’

‘तुम ठीक कहती लगती हो ।’ बाबा गम्भीर हो गये । उन्हें भी अटपटा लग रहा था । किसी बछड़ेको स्पर्श करके उन्हें नीलमणिके स्पर्शका भ्रम हुआ और वे ऐसे तन्मय हो गये, यह अद्भुत बात थी । ऐसा तो कभी हुआ नहीं था । नीलमणि अंकमें आ बैठे तो तन्मयता छा जाती है, यह दूसरी बात है । ऐसा तो सभी गोपों और ऋषि-मुनियोंके साथ भी होता है । अपने नीलमणिकी इस विशेषताके तो सब गोप अभ्यस्त हो गये हैं; किन्तु अब बछड़ोंमें वही विशेषता ?

‘मैं दादासे पूछता हूँ ।’ बाबाको इसमें महर्षिसे पूछने जैसी बात नहीं

लगी । उनके बड़े भाई उपनन्दजी बहुत अनुभवी हैं, बहुत ज्ञानी हैं । ऋषि-मुनियोंकी चरण-वन्दना और अर्चा करना तो उचित है; किन्तु उन्हें अपनी समस्या सुनानेकी बात बाबाको कभी उचित नहीं लगती । महात्माओंको गृहस्थोंके पचड़े क्यों सुनाये जायें । वे परम कृपालु भले कुछ कहें नहीं; किन्तु उनको खेद तो होता ही होगा । उनके भगवच्चिन्तनमें बाधा पड़ती है ।

दूसरी बात भी है । ऋषि-मुनि अपने ढंगसे कोई बात कहते हैं । उनकी बात साधारण व्यक्तिकी समझमें कम ही आती है । वे चाहे जिसे नारायण, परमात्मा और जाने क्या-क्या कहने लगते हैं । अतः वे कोई आज्ञा दें तो उसका पालन कर देना चाहिये । उनसे कुछ पूछने जाओ तो पता नहीं वे क्या कहेंगे और उससे उलझन बहुत अधिक बढ़ भी जा सकती है ।

‘तुम्हारे दादाजी तो आज गोष्ठमें आये नहीं ।’ मैयाने इधर-उधर देखकर कहा—‘छोटे देवर या दूसरे कोई गोप भी आज आये नहीं हैं ।’

‘नन्दन तो मल्ल है । उसकी मल्लशालामें उसके कोई मित्र आ गये हो सकते हैं ।’ बाबाको किसीका भी न आना अटपटा नहीं लगा । जबकि अधिकांश गोप प्रातः-सायं उनके गोष्ठमें उनके लालको देखने आ जाते हैं । उनमें कोई न आवे, यह बात अद्भुत लगनी ही चाहिये थी ।

‘दादा कृपापूर्वक आ जाया करते हैं । वे ठहरे भजन-पूजनमें लगे रहनेवाले । उन्हें ध्यान करनेमें कभी भी देर लग सकती है और जब नीलमणि वन चला गया, अब सायंकालसे पहिले तो कोई कदाचित् ही यहाँ आवेगा ।’ बाबाने सहज भावसे कहा—‘दादाके समीप मुझे जाना चाहिये ।’

‘तुम पहिले भवनमें चलकर कलेऊ कर लो ।’ मैया जानती है कि उसके ये स्वामी एक बार यहाँसे यदि निकले तो कब लौटेंगे, इसका कुछ ठीक-ठिकाना नहीं है । नीलमणि जब घरपर नहीं होता, घर सबको ही जैसे काटता लगता है । पुरुष तो किसी बहाने वनमें भी घूम आते हैं । बेचारी नारियोंको दिन भर मन मारे रहना पड़ता है ।

‘भगवती पूर्णमासी पधारें तो उनसे पूछ लूंगी ।’ मैयाने मनमें सोच लिया । उसने देखा कि माँ रोहिणी उसे कुछ बतलाती नहीं है और बाबा कुछ बतला देंगे इसपर उसे भरोसा नहीं है ।

‘महरका कुछ ठिकाना नहीं है ।’ मैया प्रायः कह देती है—‘उनसे कुछ

कहो तो कदाचित् ही उन्हें वह बात स्मरण रहेगी । कोई गोप न भी आवे और कोई ऋषि-मुनि न भी मिलें तो वे गायोंसे ही बात करने लगेंगे । पूछनेपर कह देंगे—‘मैं तो भूल गया ।’ पुरुषोंको इतने काम रहते हैं कि वे भूल न जाया करें तो उन्हें नींद ही नहीं आवेगी ।’

महर्षि शाण्डिल्यके पास जानेको मैयाने सकारण कहा था । महर्षिके पास जाते तो मध्यमें वह बात ही भूल जायँ, इसकी सम्भावना नहीं थी । महर्षि सर्वज्ञ हैं—वे ठीक-ठीक बतला भी देते और वह मैयाको सुनाने तक भूल भी नहीं सकते थे ।

‘बड़े भाईके सामने महर कदाचित् ही बोल पाते हैं ।’ मैयाकी यह धारणा है और इसे वह अपने स्वामीका सद्गुण मानती हैं ।

‘जेठजी तो जो पूछेंगे, उसीका बहुत कम शब्दोंमें ये उत्तर देंगे ।’ मैया सोचती है—‘पता नहीं छोटे भाईसे वे आनेका कारण पूछेंगे भी या नहीं । वे तो सत्संगकी चर्चा करने लग सकते हैं और अब मध्याह्नमें तो महरको लौटना नहीं है । जेठानीजी अब बिना खिलाये तो मानेंगी नहीं ।’

मैया उलझनमें है । उसे अपना नीलमणि ही भूल जाय, यह किसी प्रकार सहन नहीं और जब वनसे नीलमणि लौटेगा भी, बछड़े भी तो उसके साथ ही लौटेंगे । बछड़ोंकी बात सोचते ही मैयाका आज स्नेह भी उमड़ता है, डर भी लगता है । लेकिन बछड़ोंपर क्रोध नहीं आता है ।

प्रातःकालकी बात किसी प्रकार निभ गयी; किन्तु वनसे नीलमणि थका लौटेगा, भूखा लौटेगा । उस समय मैया किसी बछड़ेको अंकसे सटाकर गुमसुम बैठ जाय तो उसे कितना कष्ट होगा ?

‘बछड़े आगे ही आगे दौड़ते आते हैं । उनमेंसे कोई भी नीलमणिके पहुँचनेसे पहिले दौड़ आ सकता है ।’ मैयाको डर लगने लगा है—‘महरको भी बछड़ेका स्पर्श करते ही सुध-बुध भूल गयी थी ।’

यह भी सम्भव नहीं है कि मैया पौरिपर जाय ही नहीं । वह द्वारपर न जाय तो बछड़े भवनमें नहीं आवेंगे; किन्तु वंशी-ध्वनि सुनायी पड़े तो राम-श्यामके मुखको देखनेकी उत्कण्ठा मैयाको भवनमें रहने देगी ? वह आज बहुत उलझनमें है । भगवती पूर्णमासी पता नहीं कब आवेगी ।



उपनन्द बाबा भी उलझनमें

‘अच्छे आये तुम ।’ उपनन्द बाबा अपने छोटे भाईको देखकर ऐसे उठे, जैसे उनकी प्रतीक्षा ही करते रहे हों ।

‘दादा, कोई सेवा ?’ नन्दबाबाने बड़े भाईको अभिवादन किया । अग्रजने उन्हें हृदयसे लगाया । जब दोनों बैठ गये, तब चर्चा प्रारम्भ हुई । नन्दबाबाको अपनी बात कहनेका अवसर ही नहीं मिला ।

‘तुम जानते हो कि मुझमें घरका मोह कभी नहीं रहा ।’ उपनन्द बाबाने कहा—‘मेरा गोष्ठ भी सन्नन्द और तुम सम्हालते हो । घरकी बात तुम्हारी भाभी जाने । उसने मुझे कभी कुछ करनेको नहीं कहा और न मुझसे कभी कुछ माँगा । मुझे समयपर कलेऊ, भोजन देनेमें उसने कभी प्रमाद नहीं किया । दो-दो पुत्र हुए; किन्तु बच्चोंके पालन, उनकी आवश्यकताओंकी भी चर्चा मुझतक कभी नहीं आयी । जबसे मथुरासे रानी बहू आयी है, उसने जैसे हम सबके घरोंका भी प्रबन्ध सम्हाल लिया है ।’

‘मुझसे कहीं प्रमाद हुआ है ?’ नन्दबाबा संकुचित हो गये ।’ उनका स्वर बहुत विनम्र हो गया—‘दादा ! तुमको कोई चिन्ता करनी पड़ी है ?’

‘तुमसे प्रमाद सम्भव ही नहीं है ।’ उपनन्दजीने कहा—‘तुम आवश्यकतासे बहुत पहिले हमारे घर भरे रहते हो । मैं तो अपनी चिन्ता कर रहा था और सोचता था कि तुमसे चर्चा करूँ ।’

बड़े भाईसे वैसे भी बाबा कम बोलते हैं । वे चुपचाप सुनते रहे ।

‘श्यामसुन्दर हमारे ब्रजमें प्रकट हुआ तो वह हम सबके मन-प्राणका आधार हो गया ।’ उपनन्दजीने कहा—‘कितनी अभिलाषा, मनौती, अनुष्ठानके पश्चात् आया । तुमने ही तो बतलाया मुझे कि गर्गाचार्यजी उसे नारायणका अंश बतला गये हैं । हम सबके मन-प्राण उसीमें लगे रहते हैं, यह हम वनवासी गोपोंका परम सौभाग्य ! महर्षि शाण्डिल्य कहते हैं—‘कृष्णचन्द्रमें कुछ क्षण भी मन लगे तो जन्म-जन्मके जप-तप, व्रत-अनुष्ठान, धर्म-कर्म सब सफल हो गये ।’

‘अब इस बुढ़ापेमें मुझमें अधमता आ गयी है । अब मुझमें मोह जागा

है ।' कुछ क्षण रुककर उपनन्द बाबा भरे कण्ठ बोले—'मेरे जन्म-जन्मके पुण्योंका उदय हुआ था कि मेरा जन्म गोकुलमें इस कुलमें हुआ; किन्तु लगता है कि मेरे सब पुण्य समाप्त हो गये । अब मेरे अनन्त जन्मोंके पापोंका उदय हुआ है ।'

'आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ?' बाबाके हृदयने तो कहा; किन्तु उनके शील-संकोचने वाणीपर ये शब्द नहीं आने दिये । वे केवल अपने बड़े भाईका मुख देखते रह गये ।

'जो कभी नहीं हुआ, वह कलसे होने लगा है । कल जब बालक बछड़े चराकर लौटे, वे तुम्हारे यहाँ नहीं गये । बछड़े भी वे सीधे हाँक लाये ।' उपनन्द बाबाने कहा—'मैंने उन्हें देखा और मुझमें पुत्रोंका मोह जाग गया । मैं उन्हें नहलाने-खिलानेमें लग गया और तुम्हारी भाभी भी उन्हींको सजाने, लाड़ करनेमें लगी रही । मैं तो दोनों बालकोंको अपने साथ ही लेकर सोना चाहता था; किन्तु छोटेको तुम्हारी भाभीने मेरे पास नहीं आने दिया । प्रातः जब दोनों बछड़े लेकर वनमें गये हैं, तब भी मैं उनकी ही बात सोचता बैठा था ।'

नन्दबाबाको अब बड़े भाईसे अपनी समस्या सुनानेका साहस नहीं हुआ । उपनन्दजी कह रहे थे—'कल न मैं आ सका तुम्हारे यहाँ, न तुम्हारी भाभी ही जा सकी । प्रातः भी हममेंसे कोई नहीं गया । नन्द ! हम दोनोंको श्यामसुन्दरका स्मरण ही नहीं आया । जबकि उसका श्रीमुख देखे बिना दिन काटना कठिन हो जाता था । यह हमारा पता नहीं कौन-सा पाप उदय हुआ है कि अब भी अपने व्यवहारपर हृदयमें सचमुच कोई पश्चात्ताप नहीं है । जी करता है कि एक बार वन हो आऊँ । दूरसे ही सही, बालकोंको एक बार देख आऊँ ।'

'अपने पुत्रके प्रति स्नेह होना अस्वाभाविक तो है नहीं । वह स्नेह नहीं था, यही अस्वाभाविक था ।' नन्दबाबाको तो यही लगता है । उनका चित्त भी तो अपने नीलमणिको देखे बिना व्याकुल हो उठता है ।

'बालकोंको बहुत संकोच होगा यदि हम लोग वनमें जायेंगे ।' बाबाने बहुत दबे स्वरमें कहा—'वे वनमें खेलने ही जाते हैं । उनकी स्वच्छन्द-क्रीड़ामें

बाधा पड़ सकती है ।’

‘मैं यही सोचकर वनमें नहीं जा सका ।’ उपनन्दजीने कहा—‘बछड़े भी खेलने-उछलने-कूदने ही वनमें जाते हैं । उनको चरनेकी आवश्यकता तो होती नहीं ।’

गोप या गोपियाँ दिनमें नन्द-सदन कदाचित् ही आते थे । कोई अत्यन्त आवश्यक कार्य हो तभी । गोपोंको दिनमें गायें चराने ले जाना पड़ता था । वनमें या गोवर्धनके ऊपर गायोंको लेकर दूर जाना था । दिन-भर प्रायः गोचारणमें लगता था । सायंकाल लौटनेपर गायोंकी साज-समहाल, उन्हें घास तथा दाना डालना, गोदोहन करना आवश्यक था । रात्रिके तृतीय प्रहरका अन्त होते ही गोप-गोपियाँ जाग न जायँ तो उनके गृह व्यवस्थित रहेंगे ? गायोंको सूर्योदयसे बहुत पहिले—प्रायः रात्रिके चतुर्थ प्रहरके प्रारम्भमें ही चारा डालना आवश्यक है । सूर्योदयसे पूर्व ही गोदोहन सम्पन्न हो जाना चाहिये ।

गृह और गोष्ठकी स्वच्छता, दुग्ध गरम करना, दधि-मन्थन, नवनीत तप्त करके घृत बनाना । दधि जमाना और सायं-प्रातः गोपूजन, ये कार्य गोपनारीके विशेष कार्य हैं । बालकोंकी साज-समहाल, गृह-परिचर्या, भोजन बनाना आदि तो सभीको करने ही पड़ते हैं ।

गोपनारीमें आलस्य-प्रमादका लेश भी रहे तो उसका काम नहीं चल सकता । उसके लिए रात्रिके द्वितीय प्रहर तक तो पीठ टिकानेका समय नहीं और प्रातः रात्रिके तृतीय प्रहरमें शय्या त्याग आवश्यक है । अवश्य उसे थोड़ा अवकाश दिनमें मिलता है गोष्ठ स्वच्छ करने, भोजनादि बनानेके पश्चात्; क्योंकि उस समय पुरुष गायें लेकर वनमें गये होते हैं । बालक भी बछड़े चराने चले जाते हैं ।

इतने व्यस्त जीवनमें भी गोप और गोपियाँ सायंकाल नन्दनन्दनके वनसे लौटनेसे कुछ पहिले ही मार्गपर आ जाते थे और जबतक कन्हाई सो न जाय, नन्द-भवनमें या बाबाकी चौपालमें ही बने रहते थे । प्रातः भी वे श्यामके वनमें जानेके पश्चात् अपने गृह स्मरण कर पाते थे । इतना समय निकाल देनेसे गोपियोंको मध्याह्नमें तनिक भी विश्राम नहीं मिलता था ।

अब कलसे इन दैनिकचर्यामें परिवर्तन आया है । कल सायंकाल सब

गोप-गोपियाँ अपने-अपने बालकों और बछड़ोंकी ही साज-समहालमें व्यस्त रहे । प्रातःकाल भी सबको बालक-बछड़ोंके सामीप्यसे पृथक् होना अशक्य बना रहा ।

उपनन्द बाबाके अतिरिक्त और किसीको इस नवीन क्रमने चौंकाया नहीं । सब सन्तुष्ट थे, अत्यन्त आनन्दमग्न । उन्हें ऐसा आनन्द तो श्रीब्रजराजकुमारके सान्निध्यमें ही आता था । अब प्रत्येक गृहमें वह आनन्द समुद्र उमड़ पड़ा था कि सबके मन प्राण उसमें निमग्न हो गये थे । अपने बालक—अपने बछड़े, उन्हींका चिन्तन, उन्हींकी सेवा ।

आप इसे मोह कहना चाहो तो कहलो । ब्रजमें यह मोहका समुद्र उमड़ा पड़ रहा था । ऐसा मोह जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको भी अकल्पनीय है ।

सामान्य समय होता तो गोपोंकी पञ्चायत जुड़ती । वे चौंकते और इस अवस्थापर विचार करते; क्योंकि गोप वीर जाति है । स्त्री-पुत्र तो क्या, वे अपने शरीरकी भी कम ही चिन्ता करते हैं । गोपोंके प्राण उनके पशुओंमें बसते हैं । प्रचण्ड ग्रीष्मका ताप, पावसकी झड़ी और शीतकालकी अस्थि तक वेधती वायु भी गोपको शिथिल नहीं बनाती । वे अपने पशुओंके पालक, आराधक हैं । उन्हें बालकों या बछड़ोंसे दुधारू गायें सदा प्रिय रही हैं और अब बछड़े-बालक जैसे उनके प्राण हो गये हैं । यह आकर्षण इतना प्रगाढ़ है कि इसपर ध्यान देनेकी आवश्यकता भी किसीको नहीं लगी ।

उपनन्द बाबा उस दिन या और किसी भी दिन वनमें तो नहीं जा सके; किन्तु उनके मनकी उलझन अधिक समय टिक नहीं सकी । सायंकाल बालकोंके लौटते ही मनकी रही-सही उधेड़-बुन भी समाप्त हो गयी ।

नन्दबाबाको अवश्य उस दिन मध्याह्न भोजन अपने बड़े भाईके साथ ही करना पड़ा, किन्तु भोजनोपरान्त वे अग्रजसे अनुमति लेकर लौट आये । उन्हें भी लगने लगा कि सायंकाल बालक लौटें, इससे पहिले गोष्ठमें और भवनमें करनेको बहुत आवश्यक कार्य हैं ।

मैयाको, माँ रोहिणीको तथा नन्द-सदनके सेवक-सेविकाओंको प्रसन्नता हुई । उनमें स्फूर्ति आयी । एक वृद्धा सेविकाने श्रीब्रजेश्वरीसे कहा भी—‘ये गोपियाँ सवेरे ही आ जाती थीं । अब इन्हें अपने घरके आवश्यक कार्य सूझे

तो सही । श्याम-बलरामको ये घरे ही रहती थीं । अब कुछ सेवा तो दोनों भाइयोंकी हम सबको मिलेगी ।’

उपनन्द बाबा विरक्ति प्रकृति थे । उन्होंने सत्संग भी बहुत किया था और महर्षि शाण्डिल्य तथा दूसरे ऋषि-मुनियोंको तो श्रीब्रजराजकुमारके गुणगानका व्यसन है ही । अतः उसके प्रभावसे उपनन्द बाबाकी उलझन बीच-बीचमें जाग जाती थी । उन्हें बालकोंके प्रति बड़ा असीम स्नेह कभी-कभी बहुत खिन्न करता था । यह तब होता था, जब बालक बछड़े लेकर वनमें चले जाते थे ।

बालकोंके सम्मुख रहते तो किसीको कुछ सूझता ही नहीं था । लोग कहते हैं कि विवेक-वैराग्य जागता है तब भगवत्स्मृति तथा भक्ति होती है; किन्तु यह कन्हाई ऐसा अटपटा है कि इसकी सन्निधिने बाबा-मैयाको तो वैराग्य-विवेकसे छुट्टी दे ही दी थी, अब स्वभावसे उदासीन उपनन्द बाबा उलझनमें पड़ गये थे । उन्हें अपने गोष्ठकी चिन्ता बछड़ोंके लिए तथा घरकी चिन्ता बालकोंके लिए होने लगी थी और यह चिन्ता उन्हें बीच-बीचमें अखरती भी थी ।

उपनन्द बाबाकी उलझन इतनी ही होती तो कोई बात नहीं थी; किन्तु जो जितना बड़ा होता है, उसकी उलझन भी उतनी ही बड़ी होती है । उपनन्द बाबा वयसे भी बड़े और नन्दगाँवमें सब उन्हें बुद्धि-विवेकसे भी बड़ा मानते हैं । सब उनसे आशा करते हैं कि वे गोपोंको आगामी आपत्तियोंसे सावधान करते रहेंगे । विपत्ति पड़नेपर सबका मार्गदर्शन करेंगे ।

गोकुलमें उत्पात होने लगे तो उपनन्द बाबाने ही सबको गोकुल-त्यागकी सम्मति दी थी । उनकी बात मानकर ही सब गोपोंने अपने पूर्व पुरुषोंका आवास त्यागकर वृन्दावनमें बसना स्वीकार कर लिया था । इस प्रकार गोप जिनपर इतना विश्वास करते हैं, वे अपने आपमें ही कैसे निमग्न और निश्चिन्त रह सकते हैं ।

प्रातःकाल अपने पुत्रोंके साथ उपनन्द बाबा बछड़ोंके पीछे थोड़ी दूर मार्गमें चले आये थे । उन्होंने देख लिया था कि प्रायः सभी गोष्ठोंसे इसी प्रकार लगभग साथ ही बालक बछड़ोंको लिए निकले और उनके साथ गोप भी निकले ।

गायोंको तब चरने ले जाना था, जब बालक और बछड़े कुछ दूर निकल जायें । गायोंको पहिले ले जानेका प्रयत्न कर लिया था । वे तो अपने नवजात बछड़े-बछड़ियोंको छोड़कर इन वनमें जानेवाले बछड़ोंके समीपसे हटना ही नहीं चाहती थीं । इन बछड़ोंके समीप ही बार-बार भाग आती थीं । अतः गायोंको बाँध देना पड़ा था सभीको । बछड़े उनके दृष्टिपथसे दूर चले जायें तो गायोंको दूसरे मार्गसे चरने ले जाया जा सकता था ।

गायें गोष्ठोंमें रोक ली गयीं । बछड़े और बालक कोई नन्द-भवन नहीं गये; किन्तु मार्गमें सब एक साथ पहुँचे । उनमें कोई बालक अपने बछड़ोंके साथ आगे-पीछे नहीं आया । इस प्रकार ठीक एक साथ मार्गमें सबका पहुँचना ही कम चौकानेवाला नहीं था; किन्तु इसपर किसीका ध्यान नहीं गया ।

ब्रजरज पौरसे केवल तीन बालक निकले । दाऊ, श्याम और भद्र; किन्तु भद्र जैसे कटा-कटा । वह दाऊके दाहिने लगा-लगा चल रहा था । कन्हाईसे सटा चलनेवाला भद्र आज उसके पास नहीं था । जैसे रूठा हो; किन्तु रूठनेका भी कोई स्पष्ट ढंग नहीं था ।

बालक सब नाचते-गाते, ताली या शृंग, वेणु बजाते और बछड़े सब कूदते-फुदकते; किन्तु सब अपने आपमें आनन्दमग्न । कन्हाईकी ओर जैसे कोई ध्यान ही नहीं दे रहा । कृष्णकी ओर ध्यान देने वाले केवल दाऊ ! दाऊ आज अपने छोटे भाईसे अधिक सटे, अधिक ही उससे बोलते और उत्साहित करते चलते रहे ।

दूसरे सब बालकोंका ध्यान कहीं जाता भी है तो दाऊकी ओर । वे सब अपने इस दादाकी ही प्रशंसा करने, उसीका गुण या नाम गानेमें लगे हैं । कन्हाईको भी इसमें आनन्द आता है । वह भी बालकोंके साथ ताली बजा-बजाकर अग्रजका गुणगान करनेमें लगा है ।

बछड़े-बछड़ियाँ बार-बार लौटते तो हैं; किन्तु वे श्यामके स्थानपर दाऊको बार-बार सूँघते हैं । यह सब चल रहा है । यह क्रम तो महीनों चलना है । यह भी किसीको ध्यान देनेकी बात नहीं लगी । इसपर उपनन्द बाबाका ध्यान भी नहीं गया ।

उपनन्दबाबाका ध्यान उस समय तो नहीं; किन्तु बालकों और बछड़ोंके दृष्टि-पथसे दूर होते ही जिस बातपर गया, उसने उन्हें अधिक ही उलझनमें

डाला । जैसे ही गोप-बालक अपने पशुओंके साथ एकत्र हुए, गोपोंमें प्रत्येकने, स्वयं उपनन्दबाबाने भी जो बालक या बछड़ा पास मिला, उसीको अंकसे लगा लिया । उसीका सिर सूँघने लगे । उसीसे ऐसे कठिनाईसे पृथक हुए जैसे उसे बहुत वर्षोंके लिए विदा कर रहे हों । बार-बार मुड़कर सब गोप बछड़ों और बालकोंके जानेकी दिशाकी ओर देखते रहे लेकिन किसीने भी तो श्यामसुन्दरकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया ।

कन्हाईतो चपल है । वह तो सदा वनमें जानेको उत्सुक रहता है । उसे अपनी यह उपेक्षा सूझी ही नहीं होगी । उसने भी किसी गोपी, गोप या बहिनोंमेंसे किसीसे कोई बात करनेका मन नहीं किया ।

‘कोई उस श्यामसुन्दरसे नहीं बोलता, उसकी ओर ध्यान नहीं देता तो वह भी किसीकी ओर क्यों ध्यान दे ?’ उपनन्दबाबाने अपना समाधान इस विषयमें कर लिया; पर गोपोंने और स्वयं उन्होंने श्यामसुन्दरके सम्मुख रहते बालक तो दूर, बछड़ों तकको अंकसे लगा लिया और आनन्दमग्न हो गये ।

‘गोपोंमें अपने-परायेका भेद नाम-मात्रको होता है और वह भी नन्दने प्रायः लुप्त कर दिया है । बहू यशोदाको भी सब बालक अपने नीलमणि ही लगते हैं । अतः गोपोंने यदि किसी दूसरेके बालकको अंकसे लगाया, उसका सिर सूँघा तो कोई अद्भुत बात नहीं थी ।’

उपनन्दबाबाके मनमें विचारोंकी तरंगें चल रही थीं—‘पहिले तो सब श्यामसुन्दरको देखकर अपने पुत्र, घर-द्वार सब भूल जाते थे । आज सबको क्या हो गया है ?’

‘यह कैसी मोहकी आँधी ब्रजमें चली है ?’ वे बार-बार सोचते हैं—‘जब मैं ही मोहग्रस्त हो रहा हूँ तो दूसरे गोप यदि मोह-विवश हैं तो आश्चर्य क्या ?’

उपनन्द बाबाको भी कोई उपाय नहीं सूझा तो उन्होंने महर्षि शाण्डिल्यके समीप जाकर निवेदन करनेका निश्चय किया । वे सीधे महर्षिके आश्रमकी ओर चल पड़े । किसी और को साथ लेना उन्हें आवश्यक नहीं लगा ।



कुछ अद्भुत

‘अखिलेशकी माया अतर्क्य अचिन्त्य है ।’ महर्षि शाण्डिल्यने शान्त गम्भीर स्वरमें कहा—‘हम सब जानते हैं कि वे निखिल ब्रह्माण्ड नायक अपनी अहैतुकी करुणावश हमारे मध्य श्रीब्रजराजकुमारके रूपमें इस समय पधारे हैं । वे लीलामय कोई लीला कर रहे हैं तो उसका रहस्य ज्ञात कर लेना योगीश्वरोंके लिए भी शक्य नहीं है । वे करुणा-वरुणालय हैं और हम सबको अपना स्वीकार करते हैं । अतः हम विश्वास कर सकते हैं कि वे हमारा परम मंगल करेंगे ।’

नन्दगाँवके समीप यमुना-तटपर, कुछ एक ओर हटकर महर्षि शाण्डिल्यके संरक्षणमें दूर तक ऋषि-मुनियोंके आश्रम थे । इन आश्रमोंकी पंक्ति बृहत्सानुपुर (बरसाने) के घाटोंसे भी आगे तक चली गयी थी ।⁹ इसमें कुछ आश्रम पहिलेसे थे—और शेष गोकुलसे नन्दब्रजके नन्दीश्वरपुर (नन्दगाँव) आनेपर बने थे; क्योंकि गोपोंके साथ ही महर्षि शाण्डिल्य भी गोकुलके समीप बसे ऋषि-मुनियोंके साथ चले आये थे ।

इन आश्रमोंमें पर्णकुटीर ही थे । प्रायः सभी आश्रमोंमें पुष्प-वाटिका, तुलसी-क्यारी थी और गायें तथा यज्ञशाला तो ऋषि-आश्रमोंका अभिन्न अंग हैं ।

आश्रमोंकी स्वच्छता तथा गो-सेवा गोप अपना कर्तव्य मानते थे । बहुत थोड़े आश्रम थे और वे एकाकी मुनियोंके थे जो केवल एक सबत्सा गौ रखते थे और उसकी सेवा दूसरे किसीको नहीं करने देते थे । गो-सेवा उनकी आराधनाका अंग थी ।

महर्षि शाण्डिल्यके आश्रमसे लगभग सटी भगवती पूर्णमासीका उटज था । केवल एक कुटिया थोड़े-से पुष्प-वीरुध । यही ऐसा आश्रम था जिसमें मधुमंगलने गायको नहीं रखने दिया था । यद्यपि वह स्वयं श्रीकृष्णके साथ प्रतिदिन वनमें बछड़े चरानेके समय जाता था; किन्तु वह तो गोप-बालकोंके साथ खेलने जाता था । उसने गाय-बछड़ा रखना स्वीकार ही नहीं किया ।

9. उस समय यमुनाका प्रवाह गोवर्धन, नन्दगाँव, बरसानाके समीप होता गोकुल मथुराके मध्य तो प्रायः आजके समान ही था ।

महर्षि शाण्डिल्यसे उसने पहिले ही कह दिया—‘मामा’ ! मेरे सब सखाओंके घरोंमें दूध-दधि; नवनीतके भाण्ड भरे रहते हैं । मैं गोबर उठानेका झंझट नहीं पालूँगा ।’

आज प्रातः-कृत्य करके सब ऋषि-मुनि महर्षि शाण्डिल्यके आश्रममें एकत्र हो गये थे । यद्यपि यह कोई आयोजन नहीं था ? महर्षिने किसीको बुलाया नहीं था और ऋषि-मुनि भी परस्पर सम्मति करके एकत्र नहीं हुए थे; किन्तु सबकी एक ही समस्या थी और सबकी समान दिनचर्या होनेसे सबको अवकाशके क्षण भी प्रायः एक ही समय उपलब्ध होना था । स्वतः सबने महर्षिसे अपनी-अपनी समस्या निवेदन करनेका निश्चय किया था ।

केवल भगवती पूर्णमासी इस समूहमें सम्मिलित नहीं हुई थीं । वे कभी कुछ कहना भी चाहती हैं तो महर्षिसे अकेले ही कहती हैं । महर्षि उनका अग्रजाके समान सम्मान करते हैं । सभी ऋषि-मुनि उनको आदरणीया मानते हैं ।

कल सायंकाल सदाकी भाँति-ऋषि-मुनियोंका समुदाय भी श्रीब्रजराजकुमारकी वंशी ध्वनि सुनकर वन-पथपर प्रतिदिनके समान पहुँचा था । प्रतिदिन यह तापस-वर्ग श्यामसुन्दरके श्रीमुखका दर्शन करके, स्वस्तिपाठ पूर्वक आशीर्वाद देकर अपने आश्रमोंको लौटता था; किन्तु कल किसीने श्रीकृष्णकी ओर देखा ही नहीं । जैसे ही बछड़े आगे आये, ये ऋषि-मुनि बछड़ोंका ही स्वस्त्ययन करने लगे थे और बछड़ोंके ही साथ अपने आश्रमोंको लौट आये थे ।

इन ऋषि-मुनियोंको अपनी गायों तथा बछड़ोंमेंसे भी बहुत कमकी और नाममात्रकी पहिचान थी । इनकी गायोंकी, गोशालाकी सेवा भी गोप ही करते थे । इनकी गायें जो गोदानमें मिलती थीं, प्रायः देनेवाले गोपोंके गोष्ठोंमें ही रहती थीं । उनके दूधका दही बनाना, माखन निकालकर घृत बनाना गोप गृहोंमें ही होता था । गोप तो इन्हें केवल घृत पहुँचा दिया करते थे । इनके आश्रमोंमें दूध देनेवाली दो या तीन गायें अपने बछड़े-बछड़ियोंके साथ इसलिए रखी जाती थीं कि इनको धारोष्ण-दूध मिलता रहे । इन्हें गो-पूजनके लिए कहीं जाना न पड़े और इनके आश्रमोंको उपलिप्त करने तथा पूजनादिके समय गोमय-गोमूत्र उपलब्ध रहे ।

ऋषि-मुनियोंमें गौके प्रति श्रद्धा भरपूर थी; किन्तु उन्हें अपने भजन-पूजन-सत्संगादिसे अवकाश नहीं था । अतः कभी वे किसी गौ या बछड़ेपर दो-चार बार हाथ फेर दें तो उस पशुका सौभाग्य ।

अब कल सायंकाल अचानक सबमें बछड़ोंके प्रति स्नेह उमड़ पड़ा था । वे अपना सन्ध्यादि कर्म बहुत संक्षिप्त किये और अपनी-अपनी गोशालाओंमें रात्रिमें तब तक बने रहे, जब तक बछड़े सो नहीं गये । बछड़ोंपर वे हाथ ही फिराते रहे ।

प्रातःकाल अवश्य सदाके अभ्यासके अनुसार नित्यकर्म, सन्ध्यादिमें कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ; किन्तु बछड़े गो-वन्दनके समय दीखने ही थे और फिर तो जब वे वनमें चरने चले गये, उन्हें पहुँचाकर ही लौटना हो सका । प्रातःकाल भी श्रीनन्दनन्दनपर आज दृष्टि नहीं गयी । दृष्टि बछड़ोंपर ही लगी रही ?

‘यह मोह है’ बछड़ोंके वनमें चले जानेपर सब चौंके—‘ऐसा ही मोह सम्भवतः पूर्वकालमें वनवासी भरतजीको मृग-शायकमें हुआ था ।’

प्रायः सब ऋषि-मुनियोंके चित्तमें एक ही बात उठी—‘साक्षात् परमपुरुष श्रीकृष्णके सम्मुख रहते हममें यह मोह ? यह तो हमारा घोर पतन है ।’

वे सब वीतराग तापस थे । उन्हें कोई तप या व्रत करनेका निर्णय करनेमें कोई कठिनाई नहीं थी । स्थानका त्याग करके अन्यत्र कहीं जानेमें भी उन्हें कोई हिचक नहीं थी; किन्तु महर्षि शाण्डिल्यमें उन सभीकी आस्था थी । अतः वे महर्षिके समीप अपने लिए उचित निर्वेश पानेकी इच्छासे बछड़ोंके वनमें जानेपर सीधे ही चले आये थे ।

महर्षिने सबका यथोचित सम्मान किया । वे भी सबके साथ ही तो लौटे थे; किन्तु तनिक शीघ्रतापूर्वक पद बढ़ाकर चले आये थे । आज वे बहुत अधिक गम्भीर थे । अपनी यज्ञशालामें उन्होंने सबको आसन दिया । सबके बैठ जानेपर सबकी बात सुनी । सबकी एक ही बात—एक ही समस्या ।

‘दिवाकरके उदित होनेपर अन्धकार रहता तो है; किन्तु उसे बने रहनेके लिए भित्तियों अथवा गुहाका आवरण आवश्यक है ।’ महर्षि अत्यन्त गम्भीर स्वरमें बोले—‘हम तापस आरण्यकोंमेंसे किसीके हृदयमें मोहान्धकार टिका

रह सके—ऐसा कोई आवरण मुझे नहीं लगता है और सच्चिदानन्दधन श्रीब्रजराज-तनयको तो मायाका कोई आवरण आवरित करता नहीं ।

‘वस्तु या व्यक्तिके प्रति आकर्षण अथवा वितृष्णा अकारण नहीं हुआ करती । उस वस्तु या व्यक्तिके किसी गुणावगुणके प्रति हमारे मनमें पहिलेसे कोई संस्कार होना चाहिये ।’ महर्षिने कहा—‘जहाँ ऐसा कुछ स्पष्ट न हो, पूर्व-जन्मके संस्कारोंको हेतु मानना पड़ता है ।’

‘बछड़ोंमें-से किसीके प्रति हममें-से किसीका कोई राग नहीं था । गोप अपनी इच्छानुसार गायें हमारी गोशालामें परिवर्तित करते रहते हैं । वे ऐसा हमसे पूछकर करते हैं; किन्तु हममें किसीने कभी किसी गौ या बछड़ेके प्रति विशेष अनुरक्ति व्यक्त नहीं की है ।’ महर्षि शाण्डिल्य ही कह रहे थे—‘मेरी अवस्था भी आप सबके समान ही है, अतः मैं जानता हूँ कि यह प्रथम प्रकारका मोह नहीं है, जैसा संसारके सामान्य मनुष्योंमें पाया जाता है ।’

‘अब प्रश्न उठता है कि क्या बछड़ोंके साथ हम सबका पूर्वजन्मका कोई सम्बन्ध है, जो किसी कारण कल सायंकाल अकस्मात् जागृत हो गया ?’ सभीको प्रारम्भसे इसीकी आशंका थी । महर्षिने कहा—‘यदि ऐसा हो तो मुझे और आप सबको यह स्थान तथा यहाँके पशुओंका सम्पर्क तत्काल त्याग देना चाहिये । अन्ततः हम सबने मोह-बन्धनके उच्छेदको ही उद्देश्य बनाकर यह अध्यात्म-पथ अपनाया है ।’

‘लेकिन अज्ञानोंके समान कोई निर्णय करना क्या उचित होगा ?’ एक वृद्ध श्वेतकेश ऋषिने पूछा ।

‘नहीं होगा ।’ महर्षि शाण्डिल्यने दृढ़ स्वरमें कहा—‘हममें अधिकांश योगसिद्ध पुरुष हैं । हम ध्यान करें एक साथ और जाननेका प्रयत्न करें कि बछड़ोंके साथ पूर्वके किस जन्मका हमारा क्या सम्बन्ध है । ये बछड़े अपने पूर्व जीवनमें किस रूपमें कहाँ थे ।’

वही; उसी समय, उन्हीं आसनोंपर सब एक साथ स्थिर आसनसे बैठ गये । उनके शरीर सीधे और नेत्र अर्धोन्मीलित । उनमें किसीको धारण-ध्यान सिखलाना नहीं था । यह कोई निरवलम्ब निर्विकल्प समाधिका प्रयत्न भी नहीं था । बछड़ोंको अवलम्बन करके, सहंतुक—उनके पूर्वजन्मके ज्ञानके लिए ध्यानकी

चेष्टा थी । अतः इसमें सविकल्प समाधिके लगने-लगानेकी कोई बात नहीं थी ।

बात हो या न हो, बछड़ोंको आलम्बन करके नेत्र बन्द करते ही मनकी स्थिति उन सुरासुर वन्दित ऋषि-मुनियोंके भी नियन्त्रणमें नहीं रह गयी । सृष्टिकर्ताके साक्षात् मानस पुत्र सनकादि भी इतनी सुगमता और शीघ्रतासे कदाचित् ही निर्विकल्प, निर्बीज, धर्ममेध समाधिमें पहुँच सकें । समाधि तो जैसे प्रतीक्षा कर रही थी । जैसे अनेक दिनोंके अनिद्र-व्यक्तिके पलक बन्द करते ही उसे घोर सुषुप्तिमें पहुँचनेमें समय नहीं लगता, बे मुनिगण भी सहसा निर्विकल्प समाधिमें स्थित हो गये ।

पता नहीं वे लोग अपने उन आसनोंसे उठ भी पाते या नहीं और उठते भी तो कब उठ पाते; क्योंकि निर्बीज निर्विकल्प समाधिसे उत्थान तो हुआ नहीं करता; किन्तु आज तो ब्रजमें सभी कुछ अभूतपूर्व अकल्पित हो रहा था । भगवती पूर्णमासी महर्षि शाण्डिल्यके आश्रममें पधारीं । उनकी भी समस्या थी और वे महर्षिसे विदा लेने आयी थीं । इसकी चर्चा आगे करेंगे उन्होंने महर्षिको पुकारा । उत्तर न पाकर उनको बुझती घातशालामें पहुँची और ठिठककर खड़ी रह गयीं ।

भगवती पूर्णमासीके अतिरिक्त कोई अन्य होता तो यह यही समझता कि वे सब ऋषि-मुनि एक साथ परलोक चले गये हैं । उनमें-से किसीके शरीरमें जीवनके कोई चिन्ह नहीं थे । निर्विकल्प समाधिमें तो नाड़ीकी गति, हृदयकी गति, रक्ताभिसरण आदि सब बन्द हो जाते हैं । लेकिन भगवती पूर्णमासीको न किसीकी नाड़ी टटोलनी थी और न हृदय-गतिकी जाँच करनी थी । उन्होंने खड़े-खड़े ही नेत्र बन्द किये और एक क्षण पीछे ही शीघ्रतापूर्वक नन्दभवनकी ओर चल पड़ीं ।

‘औपचारिकता पीछे, पहिले ब्रजराजको बुलाओ ! ‘भगवती पूर्णमासीने जिस स्वरमें आदेश दिया, उससे मैया यशोदा चौंक गयीं । उसने हाथमें अञ्चल लेकर भगवतीके चरमोंमें सिर रखा, किन्तु भगवतीने आसन स्वीकार करनेसे पहिले आदेश दिया—‘मुझे बहुत आवश्यक सूचना देनी है ।’

समाचार पाकर नन्दबाबा जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर चले आये ।

उन्होंने भगवतीके सम्मुख भूमिमें मस्तक रखा । भगवतीने आशीर्वाद केवल हाथके संकेतसे दिया और बोलीं—‘ब्रजराज, समझमें नहीं आ रहा है कि इस समाचारपर आनन्द मनाऊँ या रोऊँ और तुम क्या करो यह भी बतलानेकी स्थितिमें नहीं हूँ ।’

‘समाचार ?’ बाबा दोनों हाथ जोड़े खड़े थे । वे केवल एक शब्द बोल सके ।

‘तुमने सत्पुरुषोंकी सेवा की है ।’ भगवती अब आसनपर बैठ गयीं—‘तुम जानते हो कि निर्विकल्प समाधि ऋषि-मुनियोंमें भी सौभाग्य मानी जाती है और उसमें भी निर्बीज निर्विकल्प दुर्लभ है । उससे उत्थान नहीं होता ।’

‘हम अज्ञानी गोप हैं ।’ बाबाने समझा कि भगवती उस समाधिमें बैठनेकी सूचना देने आयी हैं—‘हमसे अपराध होना अस्वाभाविक नहीं है; किन्तु आप करुणामयी हमें क्षमा नहीं करेंगी तो कौन करेगा ?’

व्याकुल होनेकी बात तो है ।’ भगवतीने बाबाको अश्रु बहाते देखकर कहा—‘लेकिन मैं कुछ करने नहीं जा रही हूँ । महर्षि शाण्डिल्य और उनके आश्रमके आसपासके सब ऋषि-मुनि निर्बीज निर्विकल्प समाधिमें स्थित हो चुके ।’

‘सब ऋषि-मुनि... महर्षि’ बाबाके नेत्र फटे-फटेसे रह गये । मैया यशोदा यह तो नहीं समझ सकी कि क्या हुआ है; किन्तु यह समझ गयी कि कोई बड़ा अनर्थ हुआ है । बाबा अटक-अटककर बोले—‘निर्बीज... समाधि !’ उन्होंने भगवतीके दोनों चरण पकड़ लिए और उनपर सिर रखकर मूर्छित प्राय हो गये ।

‘धन्य नन्दब्रज ! धन्य ब्रज धारा ।’ भगवतीका कण्ठ भी गद्गद् हो रहा था । उनके विशाल दृगोंसे भी धाराएँ चल रही थीं—‘जहाँ एक भी साधकको निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है, वह स्थल प्रलय पर्यन्त तीर्थ बना रहता है और ।’

‘ब्रजराज ! अपनेको समझालो !’ भगवतीने अपनेको स्थिर कर लिया—‘वनमें जाकर श्रीकृष्णचन्द्रको समाचार दो और उन्हें ले आओ । वे क्या करेंगे, कोई अनुमान नहीं कर सकता । सम्भव है उनकी उपस्थिति महर्षि तथा उनके

अनुगतोंको उत्थित कर दे ।’

‘नीलमणि उठा देगा महर्षिको ?’ बाबाको जैसे अगाध जलमें डूबते कोई नन्हा सहारा मिला । भगवतीको प्रणिपात करके वे वनमें जानेको चल पड़े ।

‘मामाको ध्यान करनेका व्यसन है । वे सब ऋषि-मुनि बैठे-बैठे ऊँघते हैं ।’ श्रीब्रजराजको वनमें दूर नहीं जाना पड़ा । श्यामसुन्दर उन्हें आता देखकर स्वयं दौड़ा आया था उनके समीप, किन्तु मधुमंगल भी साथ ही आया था और बाबाकी बात सुनकर बोला—माँ तो भोली है । वह डर गयी होगी । कन्हाई जायेगा तो जाने आनेमें ही थक जायेगा । आपके साथ मैं चलता हूँ ।’

आप उन ऋषि-मुनियोंको जगा लेंगे ?’ बाबाने महर्षिसे सुन रखा है कि मधुमंगल कोई सिद्ध है । बाबा उसे लगभग एक जैसी आयुमें रहते कई वर्षसे देख रहे हैं । अतः उन्हें लगा कि नीलमणि भले उन लोगोंको समाधिसे न उठा सके, ये सिद्ध देह तो उठा ही लेंगे ।

‘उन्हें जगा तो कोई बछड़ा दे सकता है ।’ मधुमंगलने बाबाका हाथ पकड़ा—‘बाबा ! आप नहीं जानते । ये बछड़े सोते कपि और शशकको भी सूँघकर जगा देते हैं । कोई वृषभ न जागे तो उसे सिरसे ठेलकर जगाते हैं ।’

‘आप कृपा करके मेरे साथ चलो !’ मधुमंगलका परिहास ग्रहण करने की स्थिति बाबाकी नहीं थी ।

‘चलो, मैं कृपा करके बहुत से मोदक भी उदरमें पहुँचाऊँगा’ मधुमंगल भला परिहास क्यों छोड़ दे ।

हुआ केवल इतना कि मधुमंगल बाबाके साथ चला आया । बाबा वनसे सीधे महर्षिके आश्रम पहुँचे तो मधुमंगलने महर्षिको दूरसे पुकारा—‘मामा !’

‘मामा ! आप सब बैठे-बैठे सोने लगे ?’ मधुमंगलकी उपस्थितिने ही सबको जागृत कर दिया । वह महर्षिके समीप जाकर पूछने लगा—‘यह तपस्याकी कोई नवीन विधि है ?’

‘यह तुम्हारे सखा जानते होंगे ।’ महर्षि भरे कंठ बोले । वे भी कैसे जानते कि यह जो मधुमंगल बना उनके सामने खड़ा है, वही नटखट है, जिसकी

वे चर्चा कर रहे हैं । उनके तथा दूसरे सभी महर्षियोंके नेत्र, मन तो मधुमंगल पर लगे थे । उन सबकी वही दशा थी जो प्रातः बछड़ोंके सामीप्य में हुई थी ।

‘अरे, मेरा सखा तो वनमें है । वह अकेला आवेगा और थकनेपर उसे भूख लगेगी तो मेरे भागके भी मोदक खा जायेगा ।’ मधुमंगल यह कहकर वहाँसे वनकी ओर भागा ।

श्रीब्रजराजको अब अपने भवन जाकर भगवती पूर्णमासीको आश्वस्त करना आवश्यक लगा । महर्षिको प्रणाम करके उनसे अनुमति लेकर वे लौट गये ।

‘कुछ अद्भुत है ।’ महर्षिने सबके स्वस्थ होनेपर कहा—‘किन्तु हम सबके लिए चिन्तित होने जैसा कुछ नहीं है । जिनके स्मरणसे अनायास निर्विकल्प समाधिका प्रसाद प्राप्त होता हो, वे गोवत्स सच्चिदानन्दधन श्रीकृष्ण चन्द्रसे अभिन्न ही हो सकते हैं । उनका सान्निध्य तो भगवान् आशुतोषको भी वाञ्छनीय ही होगा ।’

‘ये गोवत्स.....’ एक वृद्ध ऋषि साश्व नेत्र बोले—‘लगत है कि अनन्त दयार्णव श्रीब्रजराज कुमारने हम सब पर कृपाकी है । हम उनसे वियुक्त रहते थे रात्रिमें और दिनमें भी । हममेंसे किसीको केवल प्रातः-सायं उनके श्रीमुखकी झाँकी करके सन्तोष नहीं था । उन शरणागत वत्सल, स्वजन प्रतिपालने हम सबको इन रूपोंमें अधिक सान्निध्य देनेका अनुग्रह किया है । वे तो हैं ही अहैतुक कृपा पारावार ।’



भगवती पूर्णमासी

अनेक बार मनुष्य-श्रेष्ठतम ज्ञानी जन भी ऐसी स्थितिमें पड़ जाते हैं कि वे दूसरोंके मनका सन्तोष जिन युक्तियोंसे कर देते हैं, उन्हींसे स्वयं उनका समाधान नहीं हो पाता । भगवती पूर्णमासीने मैया यशोदाका समाधान कर दिया था । मैया स्वभावसे इतनी भोली है कि उसने भगवतीकी बात पर सहज ही आस्था कर ली । आज 'अन्ध श्रद्धा' का नाम लेकर मनुष्य चाहे जितने कुतर्क और अपनी कुबुद्धि पर गर्व करें किन्तु श्रद्धा-आस्था अमृतमयी है । निश्चिन्तता एवं शान्ति आस्थाकी लोकमंगला पुत्रियाँ हैं ।

‘गायें निखिल देवमयी हैं । गोवत्स साक्षात् धर्म हैं । किन्हीं धन्यक्षणोंमें ही मनुष्य इस शुभ सत्यको समझ पाता है ।’ भगवती पूर्णमासीने कहा था— ‘लगता है कि अनुग्रहमयी लोक माता सुरभिने ब्रजराज और तुम पर कृपा करके तुम दोनोंको अपनी सन्तानोंका दिव्य स्वरूप प्रत्यक्ष करा दिया है ।’

मैयाने यह सुनकर भगवतीके चरणोंपर सिर रख दिया था । उसका समाधान हो गया था । उसकी समाधान हो गया । उसकी गोवंशके प्रति जन्म-जात श्रद्धा अत्यधिक बढ़ गयी । उसने उसी दिन ब्रजराजको भी भगवतीकी बात सुना दी । अतः बाबाको भी महर्षि शाण्डिल्यसे कुछ पूछना आवश्यक नहीं जान पड़ा ।

भगवती पूर्णमासीकी समस्या इससे कुछ भिन्न थी । उनके आश्रममें न गाय थी, न बछड़ा-बछड़ी । अतः किसी बछड़ेने उनके मनमें कोई समस्या नहीं उत्पन्न की । उनकी समस्या उनका मधुमंगल था । मधुमंगल अत्यन्त विनोदी और अवधूत स्वभावका था । महर्षि शाण्डिल्य भी उसे जन्म सिद्ध कहते थे । जबसे उसे लेकर भगवती ब्रजमें आयी थीं, वह उनकी कुटियामें तो आ जाता था, कभी-कभी दो तीन बार चक्कर लगा जाता था, किन्तु रात्रि-शयन किसी गोपगृहमें—जहाँ उसे निद्रा आवे कर लेता था ।

श्रीकृष्णजन्मके पश्चात् भी मधुमंगलकी दिनचर्यामें केवल इतना अन्तर आया कि वह प्रायः दिन भर नन्द-भवन रहने लगा । यही क्रम अब चल रहा है । रात्रिमें नन्द-भवन वह नहीं रहता । अँधेरा होते ही वहाँसे चल

देता है और किसी गोपगृहमें रात्रिका आहार लेकर प्रायः वहीं सो जाता है ।

मधुमंगल अब तो मैया यशोदासे कह देता है—‘रातमें मैं सखाके समीप रहूँगा तो यह सोयेगा नहीं । खेलता रहेगा या बोलता रहेगा ।’

मधुमंगलको कहाँ तर्क संगत कोई बात कहनी आती है । वह तो कुछ भी कह दे सकता है । अतः उसकी बातों और कार्योंको कोई गम्भीरतासे नहीं लेता । भगवती तो ब्रज आकर उसकी ओरसे सर्वथा निश्चिन्त हो गयी थीं ।

अचानक कल शामको मधुमंगल वनसे लौटकर सीधे भगवती आश्रम चला गया । फिर तो उसके प्रति भगवतीका वह स्नेह उमड़ा कि उन्होंने ही उसे कहीं जाने नहीं दिया । वह भी भगवतीके स्नेह भरे आग्रहोंको चुपचाप मानता गया । कल वह बहुत सीधा बन गया था ।

‘सब गोपियाँ मेरे सखाओंका सत्कार करनेमें लगी हैं ।’ कल उसने आश्रम पहुँचते ही कहा था—‘इस समय ब्राह्मणको मोदकदान करनेकी उनकी श्रद्धा मन्द पड़ गयी है । मेरे सखा भी वनमें भटककर श्रान्त हैं ।’ वह सदाकी भाँति ही बोलता रहा—‘मैं माँके ही उटजमें सोऊँगा । यह तो बहुत स्वच्छ उटज है । यहाँ कोई कपि या विडाल मेरी निद्रामें बाधा देना चाहेगा तो माँ उसे भगा देगी ।’

उसने ब्रज आकर कल रात्रिमें भगवतीके करोंसे दिया दुग्धपान किया और सो गया । प्रातः उठकर वह स्वयं स्नान करके भाग न गया होता तो भगवती उसे कलेऊ करातीं । आज पहिली बार भगवतीको प्रातः अपने उटजमें बालकके लिए कलेऊके अभावका अनुभव हुआ । इस अनुभवने भगवतीको और उद्विग्न किया ।

‘ब्राह्मणके चित्तमें परिग्रहकी कामना होगी तो उसे प्रतिग्रहजीवी बनना पड़ेगा ।’ भगवतीने सदासे तपस्विनीका जीवन व्यतीत किया है । वे अत्यल्प गोदुग्ध मात्र लेती हैं और उनका मधुमंगल ऐसा है कि उसके लिए तो उसके शैशवमें भी चिन्ता नहीं करनी पड़ी । आज भी मधुमंगलने कलेऊ करानेका अवसर नहीं आने दिया था; किन्तु भगवतीके ही चित्तमें उसे कलेऊ करानेकी तीव्र ललक उठी थी ।

‘मधुमंगलको मेरी आवश्यकता तो कभी नहीं रही ।’ अत्यल्प कामनाकी भी प्रतिक्रिया भगवतीके चित्तमें तीव्र वैराग्यके रूपमें हुई । वे महर्षि शाण्डिल्यके समीप उनसे कहकर कहीं अन्यत्र चले जानेका विचार करके गयी थीं; किन्तु उस समय तो महर्षि सब ऋषि-मुनियोंके साथ समाधिमें थे । अब नन्द-भवनसे लौटकर वे महर्षिके आश्रम आयीं । श्रीब्रजराजने उन्हें महर्षि तथा अन्य मुनिजनोंके समाधिसे जागनेका समाचार दे दिया था ।

‘जीजी, आप हम सबसे बड़ी हो, अतः इस उलझनमें भी आपको महत्व प्राप्त हुआ है ।’ महर्षि शाण्डिल्यने भगवती पूर्णमासीकी बात सुनकर कहा— ‘हम सबके मनमें गोवत्सोंके प्रतिमोह जागा है; किन्तु आपमें तो सच्चिदानन्द श्रीकृष्णके अन्तरंग सखाके प्रतिमोह जागा है । श्रीब्रजराजकुमार और उनके जनोके प्रति आसक्तिका नाम ही तो भक्ति है ।’

‘दादा ! आप मुझे जानेकी अनुमति दे दो ।’ भगवतीके स्वरका आग्रह शिथिल हो गया था ।

महर्षि शाण्डिल्य भगवतीको बड़ी बहन मानते थे । उनका कहना था— ‘आपके अग्रज महर्षि सान्दीपनि मेरे श्रद्धेय हैं, पूज्य हैं ।’ लेकिन भगवती महर्षि शाण्डिल्यको बड़ा भाई मानकर आदर करती थीं । दोनोंका यह स्नेह-कलह कभी समाप्त नहीं हुआ ।

‘जीजी ! आपको अनुमति देनेका साहस मुझमें नहीं है ।’ महर्षिने सविनय कहा— ‘आपको मैं रोक भी नहीं सकता । आप हम सबका सामीप्य त्यागकर अन्यत्र पधारना चाहेंगी तो कौन आपको रोक सकेगा; किन्तु श्रीब्रजराजकुमार और बृहत्सानुपुरकी बालिकाओंको छोड़कर आप कहीं जाकर भी कौन-सा निःश्रेयस सिद्धकर पावेंगी ?’

भगवती लगभग चौंक गयीं । उन्हें अब तक बरसानेकी बालिकाओंका स्मरण क्यों नहीं आया ? कल सायंकालसे उनके चित्तको हो क्या गया है कि मधुमंगलके अतिरिक्त दूसरा कुछ वे सोच ही नहीं सकीं ।

‘दादा ! आपका निर्णय सदा असन्दिग्ध एवं आदरणीय होता है ।’ भगवतीने महर्षिको मस्तक झुकाया । वहाँसे वे बृहत्सानुपुरकी ओर चल पड़ीं ।

भगवती पूर्णमासी कदाचित ही कभी बृहत्सानुपुर जाती हैं । यद्यपि

वहाँकी बालिकाओं पर उनका असीम वात्सल्य है: किन्तु बालिकाएँ अत्यन्त संकोचशील हैं । माताओंकी उपस्थितिमें वे भगवतीसे भी संकोच करती हैं । वे सब तो खुलकर भगवतीके आश्रममें उनसे मिलती-बोलती हैं । वहीं वे भगवतीसे अपने चित्तकी पूरी स्थिति बता पाती हैं । लेकिन आज तो भगवती स्वयं श्रीकीर्तिकुमारीसे कुछ पूछना चाहती हैं ।

बाबा वृषभानुके सदनमें बड़े उल्लाससे भगवतीका स्वागत एवं पूजन हुआ । कीर्ति मैयाने उनके चरण प्रक्षालनके समय देर तक पाद-संवाहन किया । कठिनाईसे उन्हें भगवती अपने चरणोंसे उठा सकीं ।

‘आज आपकी चरणरज पड़नेसे यह भवन पवित्र हो गया !’ भगवतीको चाहे जितना संकोच हो, उनको अपनी पूजा भी स्वीकार करनी पड़ी और मौन रहकर स्तुति भी सुननी पड़ी । मैयाने अन्तमें कहा—‘सेवाका कोई सौभाग्य पाकर गृहपति अपनेको धन्य मानेंगे ।’

‘मैं ललीसे मिलने आ गयी ।’ भगवतीने श्रीराधाके मस्तक पर कर रखते कहा—‘इसका कक्ष देख लेती हूँ ।’

श्रीराधा मस्तक झुकाये उठ खड़ी हुई । कीर्ति मैया तथा अन्य बड़ी गोपियोंके लिए यह संकेत ही पर्याप्त था । भगवती बालिकाओंसे एकान्तमें मिलना चाहती हैं, यह समझकर सबको प्रसन्नता ही हुई । भोली बालिकाएँ भगवतीसे हिली-मिली हैं । भगवती उन्हें आशीर्वाद भी एकान्तमें ही खुले मनसे दे सकती हैं ।

‘मैं आज तो तुम्हें उपालम्भ देने आयी हूँ ।’ भगवतीने एकान्त मिलते ही श्रीराधासे कहा—‘तुम त्रिभुवन सम्मोहिनी आदि शक्ति महामाया हो, यह मैं जानती हूँ; किन्तु इस श्वेत केशा वृद्धा पर कृपा किये बिना तुम रह सकती हो ? इसे इस प्रकार तुम क्यों उलझनमें डालती हो कि यह तुम्हारे प्रत्यक्ष-सात्रिध्यको भी छोड़ देनेका विचार करनेको बाध्य हो ?’

श्रीराधाका चिबुक पकड़कर उनका अवनत श्रीमुख भगवतीने ऊपर उठाया । ललिता आदि बालिकाएँ चुपचाप भगवतीका मुख देख रही थीं । सब बालिकाएँ हैं, विनम्रा हैं । सब जानती हैं कि ऋषि-मुनियोंकी भाँति भगवती भी प्रायः ऐसी बातें कहने लगती हैं जो उनकी समझमें नहीं आती । अतः

भगवतीके वचनोंसे वे चौंकी नहीं ।

जब कभी श्रीराधा भगवती पूर्णमासीसे मिली हैं, उन्हें अंकमें बिठाकर भगवती अपने आपको भूल जाया करती हैं । आज भी वे सदाकी भाँति आत्म-विभोर हो गयी थीं ।

‘यह सुमन माल ?’ श्रीराधाने ललिता द्वारा कल सायंकाल लायी गयी पुष्पमाला कंठसे उतारी ही नहीं थी । प्रातःकाल स्नानके समय भी उसे पहिने ही रही थीं । सखियोंको भी उसका स्पर्श नहीं करने दिया था । अब भगवतीने उसपर एक अंगुली रख दी और उनकी दृष्टि उसीपर स्थिर हो गयी । वे उसे स्पर्श करके आगे कुछ बोलना भी है, यह भूल ही गयीं ।

सखियोंकी दृष्टि भी उस माला पर बार-बार जाती थी । वह ऐसी अद्भुत माला थी कि उसका कोई पुष्प तनिक भी म्लान नहीं हुआ था । उसकी सुरभि और सौन्दर्य जैसे क्षण-क्षण नवीन होता रहता था । इतना होनेपर भी उसके सुमन पहिचानमें नहीं आते थे । उन्हें ठीक नीलकमल भी कहना था, जबकि वे नील-कमल जैसे ही लगते थे बनता नहीं था ।

‘यातः !’ श्रीराधा बोलीं तो लगा कि साक्षात् भगवती वीणापाणिने अपनी वीणा श्रृंगारकी है । भगवतीने उनकी ग्रीवामें पड़ी मालासे दृष्टि हटाकर उनके मुखपर स्थिर कर दी । वे बहुत मन्द-मधुर स्वरमें बोलीं—‘ये क्रीडाप्रिय हैं । यह इन्हींका क्रीडा रूप है ।’

ललिता-विशाखादि बालिकाएँ भी अपनी सखीका मुख देखने लगीं । उन्हें लगा कि भगवतीके स्पर्शका ही प्रभाव है कि उनकी सखी आज भगवतीके समान ही अबूझ पहेलीकी भाषा बोलने लगी है । अन्यथा तो यह बहुत भोली है ।

‘तुम लीलामयी हो । तुम्हारी ही लीलाका सर्वत्र विस्तार है ।’ भगवती तो अपनी अटपटी भाषा बोलेगी ही—‘लेकिन अपने चरणाश्रितोंको अपनी ओर आकृष्ट किये रहनेके स्थान पर तुमने उन्हें अन्य-मनोलग्ना बनानेका यह अनोखा स्वभाव कबसे अपनाया है ?’

‘आपके वे मयूरमुकुटी वत्स-चारक आपको अद्भुत नहीं लगते ?’

श्रीराधाने बड़े संकोचसे कहा—‘वे अपने स्वजनोको अन्य-मनोलग्न देखकर तो सदा ऐसी लीला करते हैं कि सबके मन-नयन् बलात् उनकी ओर आकृष्ट हो जायें ।’

‘मैं भी तुमसे यही आशा करती हूँ । तुम आज ‘हाँ’ कह दो !’ भगवतीने अत्यधिक स्नेहसे श्रीराधाका चिबुक तनिक हिला दिया—‘मुनिजनोंमें और मुझमें भी अन्यके प्रति मोह जागे—तुम उपेक्षा कर दोगी ? तुम्हीं नहीं अपनाये रहोगी तो हम सबके साधन-तपादिका अर्थ कुछ रह जायेगा ?’

‘अम्ब ! आपके नन्हे यजमानका आकर्षण अदम्य है । वे सम्मुख हों तो किसीके मन या नेत्र अन्यत्र नहीं जा पाते और वे लीलामय हैं । उन्हें अपने ही मित्रों, बछड़ोंका वेश बनानेकी क्रीड़ा आती है । उन्हें कौतुक सूझता ही रहता है ।’ श्रीराधा इतना कहकर ऐसी संकुचित हो गयीं, जैसे उन्होंने कोई अपराध ही किया हो ।

‘अच्छा !’ भगवती पूर्णमासी सहसा सुप्रसन्न सहास्य श्रीराधाका चिबुक छोड़कर हँसीं और फिर तीन अंगुलियों-से उस सुकुमार चिबुकको स्नेहपूर्वक पकड़कर बोलीं—‘मेरी यह भोली बच्ची तो कभी नटखट बन नहीं सकती ।’

‘मैंने क्या किया है अम्ब ?’ श्रीराधा अब अपने सहज स्वरमें बोलीं—‘मुझसे कोई अपराध बन गया है ?’

‘तुझसे अपराध कभी बन सकता ही नहीं ।’ सखियाँ भगवतीकी यह बात सुनकर प्रसन्न हो गयीं । ये सब जानती हैं कि उनकी यह भोली सखी कोई, किसीका अपराध कर नहीं सकती । यह तो दूसरेके अपराधोंको भी सेवा मान लेती है और कोई गुरुजन इसकी किसी आश्रिताका कोई अपराध बतलावे भी तो उसे अपना अपराध मान लेती है ।

‘अम्ब ! आपके और महर्षि तथा उनके समीप रहनेवाले मुनियोंके स्मरणसे लोगोंका मोह मिट जाता है । सामान्य मनुष्य शुद्ध-पवित्र हो जाता है । उसपर श्रीनारायण प्रसन्न हो जाते हैं ।’ नन्हीं बालिकाके समान सरलतासे श्रीराधाने अब कहा—‘मैंने तो बाबाको यह कहते सुना था ।’

‘तुम्हारे बाबा तो श्रद्धाके स्वरूप हैं ।’ भगवतीने श्रीराधाके श्रीमुखकी ओर देखते साग्रह पूछा—‘तुम इस विषयमें क्या यह वचन दे रही हो ? अपने

बाबाकी बात ठीक लगती है तुम्हें ?'

'हाँ बाबा, तो कभी झूठ नहीं बोलते । उनकी बात तो पक्की है ही ।' श्रीराधाने इस बार अपनी सखियोंकी ओर देखा—'ये सब जानती हैं ।'

'तब ठीक है । तुम अपनी बात तो स्मरण रखोगी ही ।' भगवती पूर्ण सन्तुष्ट स्वरमें बोली—'अपनी बात भूल जानेका तुम्हारा स्वभाव नहीं है ।'

'अम्ब ! यह तो कोई बात परिहासमें भी कह दे तो उसे भी नहीं भूलती ।' ललिताने अपनी सखीका समर्थन किया । साथ ही भगवतीको उठते देखकर बोली—'लेकिन आप तो आज हम सबको आशीर्वाद देना ही भूल गयी हो ।'

'तुम सबको क्या आशीर्वाद चाहिये ? तुम्हारी यह सखी तुमपर सदा प्रसन्न रहेगी ।' बालिकाएँ तो इस आशीर्वादसे मग्न हो गयीं । भगवतीने किञ्चित् स्मितके साथ श्रीराधाके कण्ठमें पड़ी पुष्पमालाकी ओर संकेत करके पूछा—'तुम सबको भी ऐसी एक-एक माला चाहिये ?'

'नहीं तो' ललिताके साथ सब बालिकाएँ एक साथ बोलीं—'हम तो सखीकी उतारी माला पहिनकर ही भली हैं । हम कहाँ इसकी भाँति कोई माला रात-दिन कण्ठमें सम्हाले रहेंगी ।'

'धन्य हो तुम सब !' भगवतीकी अञ्जलि बँध गयी—'इसीलिए तो तुम सब श्रीराधाको अत्यन्त प्रिय हो ।'

बालिकाओंने भगवतीकी इस बातपर ध्यान नहीं दिया । उनकी सखीने भगवतीके पदोंपर सिर झुकाया था, इसलिए वे सब भी बारी-बारीसे यही करने लगी थीं । यह ऐसा काम था कि इसमें भगवतीका निवारण बालिकाएँ कभी सुनती नहीं थीं । भगवती भी एक-एकके सिरपर स्नेहपूर्वक कर फिरा रही थीं ।

'कुमारी कन्याको किसीके चरण नहीं छूने चाहिये ।' बहुत पहिले जब भगवती प्रथम वृहत्सानुपुर आयी थीं तो नहीं श्रीराधाको उन्होंने रोकना चाहा था ।

‘मैया तो कहती हं कि हम सबोंको भगवती पार्वतीको रोज-रोज प्रणाम करना चाहिये ।’ श्रीराधाने कह दिया था—‘और अभी आज ही तो मयाने कहा है कि आप वही जगदम्बा भगवती हो ।’

उस दिनसे भगवतीका रोकना ये बालिकाएँ सुनती ही नहीं हैं और भगवती भी इन्हें बलपूर्वक वारित नहीं कर पाती ।

कीर्तिमैयासे पूजित होकर, उनका उपहार स्वीकार करके भगवती पूर्णमासी जब बृहत्सानुपुरसे विदा हुई, उनका चित्त निर्मल, सन्तुष्ट था ।

संतजन कहते हैं—‘बाबा वृषभानुकी पौरि तक पहुँचकर कभी कोई असन्तुष्ट या अपूर्ण काम लौट सकता ही नहीं है ।’



इन सबको क्या हुआ ?

अत्यन्त व्यस्त रहनेवाली हैं नन्दभवनमें माँ रोहिणी । वे केवल नन्दभवनकी ही नहीं, पूरे नन्द-ब्रजकी वास्तविक संचालिका हैं । अद्भुत है उनकी क्षमता और आश्चर्यजनक है उनकी स्मृति । भवनोंमें और गोष्ठोंमें कहाँ कब क्या होना चाहिए, उन्हें पता होता है । प्रत्येक पशु और गोप तथा गोप-बालकके सम्बन्धमें उनके समीप पूरी जानकारी रहती है ।

किसका कब जन्म-नक्षत्र है और कब वर्षगांठ, किसकी कौन-सी गाय आसन्न प्रसवा है और कौन-सी अभी गर्भवती हुई है । यह सब विवरण उनको गोप बालक, गोपियाँ या सेवक देते रहते हैं । उन्हींसे वे सब आवश्यक निर्देश पाते हैं । वही सबके यहाँ उपयुक्त अवसरोंपर उपहारादि भिजवाते रहनेकी व्यवस्था करती हैं ।

इस व्यस्ततामें भी माँकी दृष्टि नन्हे पशु-पक्षियों तक पर भी बनी रहती है । प्रमाद उनको स्पर्श नहीं करता । बालकों, बालिकाओं, गोपियोंकी बात तो दूर, नन्दभवन आनेवाले काक, गिलहरियाँ, बिल्लियाँ तक उनकी कृपासे वंचित नहीं रहते ।

बालकों और बालिकाओंकी समस्याएँ भी वही सुनती-सुलझाती हैं । उनके विवाद वही निबटाती हैं । उन्होंने मैया यशोदाको अपने नीलमणिके स्नान, शृंगार, कलेऊ-भोजन करानेके लिए छोड़ दिया है । कन्हाई इतना चञ्चल है शैशवसे ही कि उसे मैया अकेली सम्हाल नहीं पाती । उसे सम्हालने-समझानेमें मैयाका सहयोग भी माँको देना पड़ता है ।

माँ बहुत सबेरे उठकर अपनी व्यवस्थामें व्यस्त हो जाती हैं और रात्रिमें देरसे, प्रायः सबके पीछे सो पाती हैं । कल सायंकाल भी उनका कार्यक्रम यथावत चलता रहा । उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि नीलमणिके साथ उनके सखा भवनमें नहीं आये । प्रातः भी इस बातपर उनको ध्यान देनेका अवकाश नहीं मिला ।

माँका ध्यान दूसरी ही बातपर गया । उन्होंने सूर्योदयसे पूर्व सदाकी भाँति आँगनमें पक्षियोंके लिए दाना बिखेर दिया था और बिल्ली, शशक, गिलहरियोंके लिए कई स्थानोंपर रोटीके छोटे-छोटे टुकड़े डाल दिये थे । इन टुकड़ोंमें कौए स्वतः भाग लेते थे ।

सायंकाल ये सब पशु-पक्षी ऐसे नन्द-भवन पहुँच जाते हैं, जैसे माँका नीलमणि बूझड़ोंके साथ इन्हें भी हाँक लाया हो । प्रातः ये सब बहुत शीघ्र उठ जाते हैं । इन्हें न मुँह धोना, न स्नान करना । सन्ध्या-वन्दन तो भला ये जानें ही क्या । सबेरे जगें और चारा चुगनेमें लग गये । नीलमणिके उठकर कक्षसे बाहर आते ही सब उसके साथ हो जाते हैं । कुछ छोटे पशु और पक्षी कक्षमें भी पहुँच जाते हैं । ये सब उसके साथ वनमें चले जाते हैं । पूरे दिन नन्द-भवन तथा ब्रजके दूसरे गृहोंमें ढूँढनेपर भी कोई बिल्ली मिले तो सोती मिलेगी । कौए तक कम ही दीखते हैं ।

आज सबेरे माँ रोहिणी दाने और रोटीके टुकड़े आँगनमें डालनेके पश्चात् कुछ देर पीछे किसी कामसे फिर आँगनमें आयीं तो चौंककर खड़ी रह गयीं । उनका यह आँगन तो पशु-पक्षियोंसे भरा रहता था इस समय; किन्तु आज ऐसा सूना क्यों है ? एक गिलहरी या बिल्लीतक नहीं । कोई पक्षी नहीं । रोटियोंके टुकड़े और दाना जैसेका वैसा पड़ा है । कोई उन्हें खानेवाले प्राणी आज आँगनमें नहीं है ।

‘ब्रजेश्वरी ! यशोदारानी !’ माँने आँगनमें-से ही पुकारा— ‘तनिक

आँगनमें तो आओ !'

‘माँ, तुम पहिले यहाँ आओ !’ कक्षमें-से श्यामसुन्दरने पुकारा ।

कन्हाईके पुकारनेका कोई कारण ही हो, यह तो आवश्यक नहीं है । यह नटखट तो माँको कोई अन्नकण ले जाती चींटी दिखानेको अथवा कोई वनकी बात सुनानेको भी पुकार सकता है; किन्तु इसकी पुकारकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । यह पुकारे क्षौर दो क्षण प्रतीक्षा करे, यह सब इसका स्वभाव नहीं है । यह पुकारे तो सब काम छोड़कर पहिले इसके पास जाओ । यह तो तब भी दो-तीन बार पुकार लेगा ।

‘माँ !’ कन्हाईने दूसरी पुकार लगायी तबतक माँ उसके समीप पहुँच गयीं और हँसकर पूछा—‘क्या हो गया ? तेरा कोई बछड़ा दधिभाण्डमें कूद गया है ?’

‘बछड़ा कूद गया ?’ कन्हाई इतना भोला है कि यह उठकर दधिभाण्डमें झाँकने लगा । माँको क्यों पुकारा था, यह भी भूल गया; किन्तु कन्हाई अपनी समस्या या प्रश्न ही नहीं भूला, माँ भी भूल गयीं कि उन्होंने क्यों प्रांगणमें मैयाको पुकारा था । यह नीलसुन्दर सम्मुख हो तो किसीको दूसरा कुछ स्मरण नहीं रहता । माँ अब अपने इस नीलसुन्दरके समीप बैठ गयीं । इसकी अटपटी बातें सुननेमें लग गयीं ।

कन्हाईको वनमें न जाना होता तो माँको आँगनमें पड़े दाने फिर स्मरण नहीं आते । लेकिन दाऊ-कन्हाईको वनमें बछड़े लेकर जाना था । दोनों भाइयोंके वनमें जानेपर सब पशु और पक्षी भी उनके साथ चले जाते हैं । अतः दिनमें किसीके आँगनमें पड़े रोटियोंके टुकड़ों और दानोंको खाने आना नहीं था । बालकोंके वनमें चले जानेपर गृह-सेविकाने सदाकी भाँति प्रांगण स्वच्छ कर दिया ।

मैयाके साथ माँ भी प्रातःकाल बालकोंके वन जाते समय भवन-पौरि तक आ जाती हैं । आज आर्यी तो दूरसे दूसरे बालक अपने-अपने बछड़े हाँकते आकर राम-श्यामके साथ होते दीखे । सब बालक या बछड़े तो दीख सकते नहीं थे, जो गृह तथा गोष्ठ नन्द-भवनके समीप थे, उनके ही बालक और बछड़े कुछ दूरसे दीखे ।

सदाकी भाँति बालक नन्द-भवन नहीं आये थे । सदाकी भाँति बछड़े श्रीव्रजराजके गोष्ठ द्वारतक भी नहीं पहुँचे थे; किन्तु दोनों माताओंकी दृष्टि अपने पुत्रोंपर लगी थी । उनका ध्यान ही इस बातकी ओर नहीं गया कि बालक अपने-अपने बछड़े लिए ऐसे आ रहे हैं, जैसे उन्हें श्यामसुन्दरसे कोई विशेष प्रयोजन नहीं है । अवश्य ही सब आ आकर दाऊको प्रणाम करते, अंकमाल देते हैं । बछड़ोंने भी दाऊको ही बार-बार सूँघना प्रारम्भ किया है ।

माँका ध्यान इस बात पर गया कि प्रायः सभी बालकोंके साथ कुछ कपि कूदते आये हैं । कुछ पक्षी ऊपर उड़ते आये हैं और शशक जैसे छुद्र पशु तथा श्वान-बिडाल भी बछड़ोंमें मिले दौड़ते उछलते आये हैं । नन्द गोष्ठसे भी कुछ कपि, छुद्र पशु निकले हैं । पक्षी उनके ऊपर भी उड़ते आये हैं । माने ब्रजेधरी मैयाकी ओर देखकर कहा—‘ये कपि, पशु-पक्षी हमारे आँगनसे ही क्यों रूठ गये हैं ? आज एक भी हमारे यहाँ नहीं आया ।’

उस समय मैयाका मन और दृष्टि थोड़ी दूर आगे बछड़ोंके साथ जाते राम-श्यामपर लगी थी । माने भी बात कही और भूल गयीं; क्योंकि उनकी दृष्टि भी दाऊ-कन्हाईपर ही लगी थी । दूसरे दिन माँको ऐसा अवसर नहीं मिला । भगवती योगमाया इतना प्रमाद नहीं कर सकती । नन्द-भवनके प्रांगणमें दूसरे दिनसे कपि, कौए, शशक, गिलहरियाँ, छोटे पक्षी आने लगे । अवश्य ही पहिलेके सुमान इन सबकी भीड़से आँगन भरता नहीं था । ये दो-तीन या चार एक-एक वर्गके आते थे; किन्तु इतने क्षुधातुर आते थे कि माँके बिखेरे दानों और रोटियोंके टुकड़ोंका कोई कण छोड़ते नहीं थे ।

इतनेसे माँकी समस्या भले सुलझ गयी, पर जो पूरे ब्रजमें श्रीकृष्णकी उपेक्षा प्रारम्भ हो गयी थी, वह तो मिटी नहीं । यह दूसरी बात है कि उससे बाबा मैयाका चित्त अधिक ही प्रसन्न हुआ । माता रोहिणीकी व्यस्तता भी कुछ घटी ही । उन्हें भी मैयाके समीप तब बैठनेका थोड़ा अवकाश मिलने लगा, जब राम-श्याम सायंकाल वनसे लौटकर भवनमें आ जायें ।

बाबाका कहना है—‘गोपोंको, मेरे बड़े और छोटे भाइयोंको भी अपने गोष्ठोंपर ध्यान देना चाहिए । मैं संकोचके कारण कुछ कह नहीं पाता । अब सबने अपने-अपने गोष्ठोंपर पूरा ध्यान देना आरम्भ किया है, यह शुभारम्भ

अभिनन्दन करने योग्य है । मुझे तो सबने मिलकर निठल्ला बना दिया था । जैसे मैं केवल आदर पाने और बैठे रहनेवाला पुतला होऊँ । गोप यदि गो-सेवासे पृथक् कर दिया जाय तो उसका जोड़-जोड़ दुखने लगता है । गोपका शरीर ही गायों तथा बछड़ोंकी सेवा करके सार्थक होता है ।’

अब सायंकाल श्यामसुन्दर भी देरतक गोष्ठमें बाबाकी गोदमें बैठने लगा । वह गोष्ठमें न भी हो तो उसका अभाव बाबाको अब खलता नहीं । अब तो वे किसी बछड़ेको गोदसे सटाकर अपने कृष्णके ही स्पर्शका अनुभव पाते हैं । ये बछड़े भी ऐसे हैं कि कन्हाईके गोष्ठसे हटते ही बाबाको घेर लेते हैं । ये सब बालकोंकी सूँघ-सूँघकर फुदकते हैं । रातमें भी खुले रहते तो शायद बाबाकी शय्यापर ही बैठते या सोते; किन्तु गायें इनके तनिक हटते ही बेचैन होने लगती हैं । अतः इनको उनकी माताओंके समीप ही रात्रिमें बाँधना पड़ता है ।

बाबाको पहिले भी अपने भोजनादिका ध्यान स्वयं नहीं आता था । अब और भी नहीं आता; किन्तु मैयाके लिए अब यह कोई समस्या नहीं रही । मध्याह्नमें अब स्वयं बाबा भवनमें समयपर आ जाते हैं और सायंकाल देरतक श्यामसुन्दर अब गोष्ठमें रहता है तो उन दोनों भाइयोंको भोजन कराने बुलानेपर बाबा उनके साथ प्रायः आ जाते हैं ।

कुछ काम भगवती योगमायाका भी बढ़ गया है । जैसे नन्द-भवनमें किसीको यह चौंकानेवाली बात नहीं लगी कि भद्र अब इस सदनके स्थानपर अपने पिताके घर रहने लगा है, वैसे ही भद्रके माता-पिताको भी यह अद्भुत नहीं लगा कि उनका बड़ा पुत्र अब नन्द-भवनसे उपरत क्यों हो गया है । उन्होंने समझा कि छोटे भाई तोकके स्नेहवश भद्र उसके साथ लगा रहने लगा है ।

मैया कहती है—‘गोपियाँ यहाँ निठल्ली बैठी रहती थीं, सब सवेरे और शामको भी भीड़ किये रहती थीं । नीलमणिको खिझाती भी थीं । उसे ठीक रीतिसे न मैं मुख धुला पाती थी, न कलेऊ करा पाती थी । अच्छा हुआ कि इन सबकी समझमें तो आया कि गोप-गृहमें प्रातः-सायं ही अधिक व्यस्त रहनेका समय होता है । अब इनके गृह-गोष्ठ भी सुचारु रूपमें चलेंगे । इनके

घरके लोग भी इनसे अधिक सन्तुष्ट रहेंगे और मैं अपने नीलमणिको समयपर सम्हालती भी रहूँगी ।

प्रातःकाल नीलमणिको वनमें जानेकी हड़बड़ी रहती है । उसके सखा बहुत शीघ्र आ जाते थे । गोपियाँ यदि अपने बालकोंको नहीं सम्हालेंगी तो बेचारे बालक माँ-बहिनोंके घरसे यहाँ चले आनेपर घरमें कैसे रुकेंगे । अब गोपियोंको समझ आयी है तो बालकोंको भी सुख मिला । उनका शृंगार, कलेऊ भी ठीक होता होगा । इसीसे उन्हें सोकर उठते ही यहाँ भागनेकी नहीं सूझती ।

अपने सदन कोई आवे तो उसकी उपेक्षा तो की नहीं जा सकती । मैं गोपियोंका ठीक सम्मान भी तो नहीं कर पाती थी । प्रातः नीलमणिको सम्हालूँ या आनेवालियोंके सम्मानमें लगी रहूँ ।

सायंकाल नीलमणि वनमें भटककर थका आता है । उसीके समान उसके सखा भी तो सुकुमार शिशु ही हैं । वे सब भी थके ही लौटते हैं । बेचारे दिन भर वनमें भटककर लौटे और घरमें न माँ, न बहिन उनको खिलाने-पूछनेवाली । वे सब यहाँ जमी रहेंगी तो बालक सूने घर जाकर क्या करते । वे भी यहीं आ जाते थे और बालक एकत्र होंगे तो दौड़-धूप, उछल-कूद तो करेंगे ही । इससे नीलमणि और उसके सखा और थक जाते थे । अब गोपियाँ समझदार हुई तो बालकोंको तो सुख मिलेगा । उन्हें तो वनसे लौटनेपर ठीक अन्न-जल मिलता रहेगा ।

‘गोपियोंकी भीड़से अवकाश मिला है जीजी, तो तुम्हें भी नीलमणिके समीप बैठनेका अवकाश मिल गया है ।’ सायंकाल श्यामसुन्दरके वनसे लौट आनेपर मैयाने मां रोहिणीसे तनिक स्मितके साथ कहा—‘नहीं यह तो अपनी मांके स्नेहसे बञ्चित ही हो गया था ।

‘इसे अपनी मैयाका स्नेह मिलता रहना चाहिए ।’ माँने कहा—‘यह तो अपना है । हम दोनोंका स्नेह इसका स्वत्व है; किन्तु घर आयेका सत्कार करके उनसे भी इसकी यह मां इसके लिए आशीर्वादकी कामना करती है ।’

आगतोंके सत्कारका भार मां रोहिणीपर ही रहता है । वे इसे तत्परतासे और अत्यन्त निपुणतासे निभाती हैं । मैयाने कहा—‘जीजी, मैं तो गँवार ग्वालिनी हूँ । व्यवहारकी उचित विधि राजकुलमें जैसी मिलती है, हम सब

क्या जानें । यह तो तुम्हारे चरण इस भवनमें पड़े, तबसे यह घर भी सभ्य निवास हो गया है ।’

‘माँ, तुम कहानी किसको सुनाती हो ?’ कन्हाईको दोनों माताओंकी चर्चा नहीं रुची । उसने बड़े भाईसे पूछा—‘दादा, माँ तुमको कहानी सुनाती है ?’

‘मुझे कहानी नहीं आती !’ मां क्या कहानी सुनावें ? उनकी अपनी कहानी ही अत्यन्त करुण है । वह इस सुकुमार बालकको तो सुनाने योग्य नहीं है ।

‘आती है’ कन्हाई ऐसे मान लेना कहाँ जानता है—‘तुम मल्लू (बन्दर) को या गौरव (बछड़े) को कहानी सुनाती हो ?’

‘ये तो तुम्हारे साथ ही वनमें चले जाते हैं ।’ माँने स्नेह भरे स्वरमें कहा—‘सायंकाल तुम्हारे साथ आते हैं और मैं कहाँ गोष्ठमें जाती हूँ ।’

‘मल्लू गोष्ठमें नहीं बाँधता ।’ श्याम सुन्दरने ऐसे कहा जैसे कोई बहुत बड़ी जानकारी दे रहा हो—‘उसे कोई नहीं बाँधता । उसे बाँधने जायेंगे तो पेड़पर भाग जायेगा । मां, वह कहाँ सोता है ? उसका घर कहाँ है ?’

‘वह तो अवधूत है । उसका कहीं घर नहीं ।’ माँने अपने नीलमणिकी अलकें सहलायीं—‘कोई बन्दर कहीं घर नहीं बनाया करता । वे वृक्षोंपर सोते हैं या किसीके भी भवनके ऊपर ।’

‘मल्लूके घर नहीं है ?’ कन्हाई कुछ सोचने लगा—‘वह सोते-सोते पेड़परसे गिर जाय तो ? वह हमारे भवनके ऊपर बैठा है ? तुम उसे बुलाकर कहानी सुनाओ !’

‘मैं मल्लूको कहानी नहीं सुनाऊँगी ।’ कन्हाईको रोका न जाय तो यह अभी मल्लूको ढूँढ़ने चल देगा और पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकता भागेगा ।

‘दाऊ दादाको कहानी सुनाओगी ?’ श्यामने माँके मुखकी ओर देखते हुए पूछा । मां जब मल्लूको कहानी नहीं सुनाना चाहती तो उसे क्या लाभ ।

‘मैं अपने लालको कहानी सुनाऊँगी ।’ माँने श्यामको हृदयसे लगा लिया ।

‘सुनाओ !’ कन्हाईने मांकी गोदमें आसन जमाया ।

‘ऐसे कहानी न सुनायी जाती और न सुनी जाती ।’ मांने समझाया—
‘तुम पहिले अपने दादाके साथ कलेऊ कर लो । कलेऊ करके मेरे पास शैयापर तुम दोनों सोओ तो मैं तुम्हें कहानी सुनाऊँगी ।’

श्याम सुन्दरकी बातें तो तब समाप्त होंगी, जब वह ऊँघने लगेगा । तब उसे गोदमें उठाकर मैया अपनी शैयापर सुला लेगी । लेकिन मां और मैयाकी कोई समस्या इस नील-सुन्दरके सम्मुख रहते मनके किसी कोनेमें टिक नहीं पाती । दिनमें यह अग्रजके साथ वनमें चला जाता है, तब भी दोनों माताओंका चित्त इसीमें लगा रहता है ।

जो विचित्र स्थिति ब्रजमें उत्पन्न हो गयी थी, उसका प्रभाव इन दोनों माताओंपर पड़ा भी हो तो इतना अल्प पड़ा कि इन्होंने फिर उसका अनुभव ही नहीं किया । इन्हींके समीप श्याम सुन्दर भरपूर स्नेह पाता रहा । मातायें भला अपने इस पुत्रकी उपेक्षा कैसे कर सकती हैं ।

● ● ●

बालक-बरसानेके

‘अपने बालक पता नहीं क्यों बहिनोसे रूठ गये हैं ।’ वृषभानु बावाने ही अपने भाईसे यह बात कही—‘दाम और सुबल दोनों राधा या उसकी सहेलियोंसे बोलना ही नहीं चाहते । पहले तो इनको घरमें बहिनसे मिले बिना चैन नहीं पड़ता था और कल मैंने सुबलसे उसकी बहिनको बुलानेको कहा तो उसने कह दिया कि ‘वह उससे नहीं बोलता ।’

बरसानेमें कई दिनों तक बालकोंके अद्भुत व्यवहारपर किसीने ध्यान नहीं दिया; किन्तु एक ही घरमें भाई-बहिन रहकर भी परस्पर रूठे रहें, बोले ही नहीं तो माता-पितासे यह बात कब तक छिपी रह सकती है ।

बालक सामने रहते हैं तो स्त्री-पुरुष सबको उनके समीप रहना, उन्हें स्नेह करना, किसी भी बहाने उनसे बोलना और उन्हें स्पर्श करना, उन्हें अंकमें लेना आदि छोड़कर दूसरा कुछ सूझता ही नहीं । बालक सामने हों तो बरसानेकी वृद्धाओंको ही नहीं, स्वयं मैया कीर्तिको भी अपनी राधा तक स्मरण नहीं आती । सबके मन-प्राण बालकोंमें ही लगे रहते हैं ।

सम्भव है, इस उपेक्षासे भी लड़कियां भाइयोंसे चिढ़ गयी हों; क्योंकि पहिले तो बरसानेमें बाबा मैया ही नहीं, सब गोप-गोपियाँ, सेवक-सेविकायें तक श्रीराधापर ही जैसे न्योछावर रहते थे । श्रीराधा इतनी भोली कि वे अपनेमें सौन्दर्य या कोई गुण मानती ही नहीं । अतः उन्हें तो लोगोंका भाइयोंसे स्नेह करना स्वाभाविक ही लगा; किन्तु उनकी सहेलियोंको यह सब सहन नहीं था । वे चिढ़ गयी हों तो आश्चर्य नहीं । कमसे कम चिढ़नेका नाटक तो उन्होंने किया ही था ।

बालक भी चिढ़नेका नाटक करते थे—खूब करते थे । लड़कियोंको वे इधर अनेक दिनोंसे देखते ही अंगूठा दिखा देते अथवा मुँह बनाकर चिढ़ा देते । इससे भी लड़कियां चिढ़ गयी थीं और उनसे दूर ही रहती थीं ।

‘मेरे यहाँ तो छोरा कई बार हठकर चुका कि उसकी इस चिढ़नेवाली बहिनको शीघ्र ब्याह करके घरसे विदा कर दिया जाय ।’ बाबासे उनके अनुजने कहा—‘कठिनाई यह है कि वह गोदमें बैठकर कोई हठ करता है तो मैं ना

नहीं कह पाता और गोपोंमें अपना-पराया तो आना नहीं चाहिए । जब तक बड़ी बहिनोंका विवाह न हो जाय, छोटीका विवाह किया कैसे जा सकता है ।’

‘विवाकी बात तो फिर सोच लेंगे ।’ वृषभानु बाबाने कहा—‘लेकिन रक्षा-बन्धन समीप है और मेरे दोनों पुत्र कहते हैं कि वे इस वर्ष किसीसे रक्षा नहीं बँधवायेंगे ।’

‘मुझे तो पत्नी दूसरी ही बात बतला रही थी ।’ छोटे भाईने बाबासे कहा—‘लड़कियां कोई व्रत करने लगी हैं । वे सब कहती हैं कि व्रत-समाप्त होनेसे पहिले वे किसी भी पुरुषका स्पर्श नहीं करेंगी । उन सबने तो गोष्ठमें जाना भी छोड़ दिया है । गोष्ठमें बछड़े उन्हें स्पर्श कर ले सकते हैं और वे पशु-पक्षी सबमें किसी नरका स्पर्श इस व्रतमें नहीं करना चाहती हैं ।’

‘अच्छा !’ वृषभानु बाबा खुलकर हँसे—‘इसीलिए लड़के भी उन सबसे रूठ गये हैं । वे भी उनसे—मिलना या बोलना नहीं चाहते । ये बालिकायें हैं तो नहीं; किन्तु पता नहीं ऐसे अटपटे व्रत क्यों करती रहती हैं ।’

‘क्या पता, भगवती पूर्णमासीने उन्हें कोई व्रत बतलाया हो । लड़कियोंपर उनका बहुत स्नेह है ।’ रत्नभानु चाचाने कहा—‘लड़कियोंकी वैसे भी व्रत-पूजनमें सहज प्रवृत्ति होती है ।’

लड़कियोंका कोई व्रत चल रहा है, यह बात भी बरसानेमें शीघ्र फैल गयी । इससे लड़कोंसे दूर-दूर रहनेकी उनकी प्रवृत्ति किसीको अटपटी नहीं लगी । उनके पिता, चाचा-ताऊ आदि स्वयं उनसे दूर रहने लगे । मातायें उन्हें न गोष्ठमें भेजती थीं और न किसी पुरुषसे कुछ कहने या कुछ देनेको कहती थीं । रक्षा-बन्धन या भैयादूजकी समस्या ही उनके सम्मुख उपस्थित नहीं हुई ।

‘तू कोई व्रत कर रही है ?’ चन्द्रावलीने ही श्रीराधासे मिलकर एक दिन पूछा—‘क्या व्रत है ? किसलिए कर रही है ? तुझे भी कोई व्रत करनेकी आवश्यकता है ?’

‘जीजी, तुम इस सम्बन्धमें मेरा एक अनुरोध स्वीकार करलो !’ श्रीराधाने बहुत आग्रहसे चन्द्रावलीके दोनों कर पकड़े ।

‘मैंने तेरी कोई बात कभी टाली है ?’ चन्द्रावली हँस पड़ी—‘पर तू कहना क्या चाहती है ? मैं भी तो सुनूँ कि ऐसा कौन गर्विष्ठ उत्पन्न हो गया, जिसे प्राप्त करनेके लिए मेरी इस गुड़िया बहिनको व्रत करना पड़े ।’

‘व्रत तो मुझे करना चाहिए, किन्तु ऐसा कोई व्रत, तप नहीं लगता मुझे जो करके यह सर्वथा अयोग्य राधा उनके योग्य हो सके । वे अपनी उदारतासे ही रीझते हैं ।’ इतना कह कर श्रीराधाका मुख लज्जासे लाल हो गया । उन्होंने दोनों हाथोंमें मुख छिपा लिया । दो क्षण रुककर बोली—‘उन्होंने ही हम सबके ऊपर दया करके, हमें मिथ्याभाषिणी होनेसे बचानेके लिए यह व्रतकी बात प्रचलितकी होगी । हमने इसका खण्डन नहीं किया । जीजी, तुम भी खण्डन मत करो ।’

‘मैं खण्डन क्यों करूँगी । मैं और बल देकर इसका समर्थन करूँगी ।’ चन्द्रावलीने कहा—‘केवल तू मुझे कोई ऐसा व्रत करनेको मत कहना । चन्द्रावलीके बसका कोई व्रत नहीं है ।’

‘सबसे कठिन, सबसे अधिक व्रत तुम्हीं करती हो जीजी !’ श्रीराधाने सहजभावसे कहा—‘यह महानता तुममें ही है कि करके भी छिपाये रहती हो । तुम बालकोंसे मिलती हो ? वे तुम्हें क्या कहते हैं ?’

‘सबमें महानता ही देखनेवाली मेरी नहीं बहिन !’ हँसकर श्रीराधाको गले लगाकर चन्द्रावलीने कहा—‘तू डर मत ! मैं सबको नाम लेकर ही पहिलेसे पुकारती हूँ । वे सब बहुत चतुर हैं, वे सम्बोधन करते ही नहीं । न नाम लेते और न दीदी या बहिन कहते । अब तो सब रूठ गये हैं । कोई तेरे पास रक्षा-बन्धन या भ्रातृद्वितीयाको नहीं आवेगा ।’

‘तुम उन सबसे बोलती हो तो ।’ श्रीराधाने तनिक अटककर हिचकते-हिचकते पूछा—‘तुम्हारे पास इन पर्वोंपर कोई आगया तो ?’

‘मैं कहाँ तेरी भाँति घुई मुई हूँ ।’ चन्द्रावली अपने स्वभावके अनुसार खुलकर हँसी—‘मैंने कइयोंको सुनाकर कह दिया है—जब तक मेरी सब बहिनें किसीका टीका नहीं करतीं, मेरे पास उसीको आना चाहिए जो मुझे टीका करना चाहे । मैं किसीका टीका नहीं करूँगी ।’

‘तुम्हारा टीका—जीजी ?’ ललिता बोलकर मुख देखती रह गयी ।

‘क्यों ? जो मुझसे ब्याह करेगा, वह मेरा टीका करेगा या नहीं ?’ चन्द्रावलीको बोलनेमें संकोच कभी नहीं होता । उसने तो ललितासे पूछ लिया—‘मेरी यह नहीं बहिन तो मेरी भाँति टीका करावेगी नहीं, तू कहे तो तेरा टीका करनेवाला भी पकड़ लाऊँ ।’

‘मुझपर आप कृपा रखो ।’ ललिताने हाथ जोड़े ।

‘एवमस्तु !’ हैसकर चन्द्रावलीने भी आशीर्वाद दे दिया ।

लड़कियोंकी जो बहुत बड़ी समस्या थी, वह इस प्रकार बहुत सामान्य ढंगसे सुलझ गयी । उन सबको परस्पर ही मिलकर बैठे रहने और बातें करनेसे अवकाश नहीं था । पुरुषोंको भी अपनी कन्याओंका न मिलना अखरता नहीं था; क्योंकि उनके चित्तका स्नेह-प्रवाह इन दिनों अपने बालकोंकी ओर उमड़ पड़ा था ।

बालकोंको कोई राखी ही न बाँधे, भैयादूजको कोई उन्हें तिलक न करे, यह बात वृषभानु बाबाको अच्छी नहीं लगती थी । उन्होंने एक दिन इसका भी मार्ग निकाल लिया । श्रीब्रजराजसे मिलने चले गये नन्दगाँव और वहाँ उन्होंने पूछ लिया—‘यदि आप अनुमति दो तो हमारे बालक भी इस वर्ष रक्षा-बन्धन अपनी नन्दगाँवकी बहिनोंसे करालें । हमारी कन्यायें बतलाती ही नहीं हैं कि उनका व्रत कबतक चलेगा । अतः यदि आवश्यक हुआ तो बालक भ्रातृ-द्वितीयापर भी यहीं आ जायेंगे ।’

‘नन्दगाँव और उसके सब जन आपके हैं ।’ बाबाने सहजभावसे कह दिया—‘आप जिसे जो आज्ञा दोगे, वह उसे अस्वीकार नहीं करेगा । यहाँकी बालिकायें भी तो आपकी ही कन्यायें हैं ।’

‘वे सब बृहत्सानुपुरसे सत्कृत होनेकी अधिकारिणी हैं ।’ वृषभानु बाबाने कहा और विदा हो गये ।

‘बाबा !’ उसी दिन शामको जब बालक वनसे लौटकर आये, सुबल वृषभानु बाबाकी गोदमें बैठ गया और श्रीदाम उनकी दाहिनी भुजासे लिपटा दाहिने आ बैठा । सुबलने कहा—‘राधा अच्छी नहीं है । उसकी सहेलियाँ भी बहुत घमण्डी हैं । हम सब नन्दगाँवकी लड़कियोंको बहिन बनावेंगे ।’

बाबा दो क्षण सुबलका मुख देखते रहे । इन दोनों बालकोंके सटकर बैठनेसे वे जैसे आनन्द सागरमें मग्न हो रहे थे । उन्होंने जो बात कई दिनों विचारके पश्चात् निश्चित की, उसे ये नन्हें बालक इतनी सरलतासे स्वयं तै कर लेंगे, यह आशा कोई कैसे कर सकता है ।

‘नन्दगाँवकी लड़कियाँ तुम्हारी बहिनें तो हैं ही ।’ बाबाने पुत्रका सिर सहलाया—‘तुम लोग उनसे चाहे जब मिल सकते हो । उनसे रक्षाबन्धन करा लेना । उन्हें अच्छे उपहार देना । वस्त्र और आभूषण भी ।’

‘वे हम सबको स्टीका करेंगी ।’ सुबल प्रसन्न हो गया—‘हमें मिष्ठान्न खिलावेंगी । बाबा, उनमें कोई कभी मुझे नहीं चिढ़ाती ।’

बाबाको तनिक अटपटा तो लगा कि सुबल राधाको तथा उसकी सहेलियोंको अच्छी नहीं कहता है । सुबलके तो अपनी बहिनमें जैसे प्राण बसते थे । वनसे आकर सीधे उसीके पास दौड़ा जाता था; किन्तु लड़कियाँ इन सबसे नहीं बोलतीं तो ये सब भी उनसे रूठ गये हैं । इस समय बाबा बालकोंके स्नेहमें मग्न हैं । उनका मन बोलनेका नहीं हो रहा । बालक बोलते रहें और वे उनकी अटपटी बातें सुनते रहें, यही चाहते हैं । दोनों बालक भी बाबाका समर्थन पाकर प्रसन्न हो गये हैं । दोनों ताली बजाते, कूदते ऐसे गये हैं, जैसे उन्हें कोई बहुत बड़ी विजय मिल गयी है ।

बालकोंको कुछ समझानेकी आवश्यकता नहीं थी । बालक अधिक समय तो रूठे रह सकते ही नहीं थे ।

‘हम नन्दगाँवकी बहिनोंसे रक्षा-बन्धन करावेंगे ।’ बालक दिन तक लड़कियोंको सुना-सुनाकर उच्चस्वरसे परस्पर कहते थे—‘हम भ्रातृद्वितीयाको भी वहीं जायेंगे । वे बहुत अच्छी हैं । उन्हें हम ढेर सारे वस्त्र आभूषण देंगे और किसीको कुछ नहीं देंगे ।’

लड़कियाँ परस्पर हँस लेती थीं । कोई-कोई दूरसे अँगूठा भी दिखा लेती थीं; किन्तु वे बालकोंके समान उच्चस्वरसे बोल तो सकती नहीं थीं । परस्पर ही कह लेती थीं—‘इन लोगोंके वस्त्र आभूषणोंकी यहाँ किसे आवश्यकता है । हम अपने बाबा मैयासे ले लेंगी । हमने कब मना किया कि ये सब अपनी नन्दगाँवकी बहिनोंका सत्कार न करें ।’

यह सब तो था; किन्तु बालक वनसे पुष्प गुच्छ, मालायें, गुंजा, मधुर फल अब पहिलेसे भी अधिक ले आते थे । सेविकाओंको देकर कह देते थे कि वह अमुकके कक्षमें रख आवे ।

सुबल और श्रीदाम दोनों मयूर पिच्छ, किसलय, कमल आदि लाकर वृद्धा दासीको देकर कहते—‘इसे राधाके कक्षमें रख आ ।’

दासी हँसती भी जाती थी और उनके उपहार पहुँचा भी आती थी । उसने वृषभानु बाबासे बतलाया था—‘बालक भले लड़कियोंको चिढ़ाते हैं, किन्तु सायंकाल किसी दिन उपहार लाना नहीं भूलते । मुझसे निहोरा करते हैं—‘यह अपनी ललीके यहाँ रख आ ।’

‘बालिकायें मना नहीं करतीं ?’ बाबाने पूछा ।

‘वे मना करेंगी ?’ वृद्धा हँस पड़ी—‘वे तो मेरी प्रतीक्षा करती रहती हैं । पहुँचते ही मेरे हाथसे सब झपट लेती हैं । एक-एक किसलय कभी गालसे सटाती हैं, कभी चूमती हैं और कभी कानपर रखती या केशोंमें सजाती हैं ।’

‘बेचारी बालिकायें अपने व्रतसे विवश हैं । रूठनेका तो बहाना किया लगता है । यह बहाना न करें तो बालक उनका व्रत चलने ही नहीं देंगे ।’ वृषभानु बाबाने सुप्रसन्न होकर प्रशंसाकी—‘लली और उसकी सहेलियाँ बुद्धिमान हैं ।’

‘हम सबने बाबाको मना लिया है ।’ एक दिन श्रीदामने उच्चस्वरसे लड़कियोंको सीधे ही सुनाया—‘तुम सबको अब झटपट ब्याह करके यहाँसे विदा कर देंगे । तुममें किसीको अब अपने घरमें नहीं रखेंगे ।’

ललिता सुनकर मुस्करा उठी । उसने दूसरी सखीकी ओर देखकर कहा—‘हमारा श्रीदाम भैया कभी नटखट नहीं था । अब यह संग-दोष होगा या ।’

‘घुप !’ श्रीराधाने मना कर दिया—‘श्रीदाम भैया नटखट नहीं है । संग-दोषसे कभी हो भी जायेगा तो मेरे सामने जब आवेगा, सीधा बन जायेगा ।’

‘कहीं इन लोगोंकी बात सच हुई तो ?’ श्रीराधाका मुख आशंकासे पीत हो उठा—‘तू मैयासे पूछकर पता लगा । ये निष्ठुर तो नहीं हैं; किन्तु क्या ठिकाना—ये बाबासे कोई हठ करेंगे तो बाबा इन्हें मना नहीं कर पावेंगे ।’

‘मैं क्या पता लगाऊँ ?’ ललिताने हँसते-हँसते पूछा—‘मेयासे पूछूँ कि वे अपनी ललीका कब ब्याह कर रही हैं ?’

‘अपना सिर पूछ ।’ श्रीराधा झल्ला गयीं ।

‘सिर तो ठीक स्थानपर ही है ।’ ललिताने अपना सिर टटोलकर भोलेपन जैसा मुख बनाया—‘अपने आप तो पता लगानेको कहती हो ।’

‘यह पता लगा कि तेरा ब्याह बाबा किसी मनुष्यसे ही कर रहे हैं या ।’

‘बन्दरसे ?’ बात ललिताने ही पूरी कर दी । ‘आजकल अपने यहाँ मनुष्योंके बालक भी बन्दर जैसे हो रहे हैं ।’

‘ललिता !’ श्रीराधाका स्वर सचमुच रुष्ट जैसा हो गया—‘तू जानती है कि मैं निन्दा नहीं सुन सकती ।’

‘अब नहीं कहूँगी ।’ ललिताने भी गम्भीर होकर हाथ जोड़े । ‘तुम समझती क्यों नहीं हो कि ब्याहकी घटपटी किसे है । क्या पता कि इसीलिए इतना सब नाटक रचा गया हो । सब तो जानते हैं कि बाबा अपने मित्रके कुमारके अतिरिक्त दूसरे किसीसे तुम्हारा विवाह नहीं करेंगे ।’

‘ललिता ! वे कल्पनातीत उदार हैं ।’ श्रीराधा विचित्र ढंगसे भाव विह्वला हो गयीं—‘अपने चरणाश्रितोंको अपनानेकी त्वरा उनका सहज स्वभाव है । वे किसीके रूप-गुण देखते होते तो राधाकी ओर नेत्र ही नहीं उठाते; किन्तु यह तो देखना उनके स्वभावमें नहीं । इसीलिए तेरा अनुमान ठीक भी हो सकता है । लेकिन मुझे कुछ और अद्भुत हेतु इस बारके अभिनयका लगता है । मैं भी इसे ठीक-ठीक समझ नहीं पाती हूँ ।’

‘तब पता लगानेकी आवश्यकता क्या है ?’ ललिताको अपनी सखीका इस प्रकार अपनेको हीन कहना बहुत अखरता है, पर सखी तो समझेगी नहीं, यह भी जानती है । अतः प्रसंगान्तर करना ही उचित लगा—‘प्रतीक्षा करें हम सब कि क्या होता है । बाबापर तो विश्वास किया ही जा सकता है ।’

‘बाबा अपनी कन्याके साथ कभी कठोर व्यवहार नहीं करेंगे ।’ श्रीराधाने शान्त स्वरमें कहा—‘उनके वात्सल्यकी सीमा नहीं है ।’



बालिकाएँ-बरसानेकी

‘अपनी बालिकाएँ भी अद्भुत हैं’ एक वृद्धाने मैया कीर्तिदासे कहा—
‘तुमने इनको यह कैसा व्रत करनेमें लगा दिया है कि भाइयोंसे भी नहीं बोलती हैं ।’

‘मैंने तो इनमेंसे किसीको भी कभी कोई व्रत नहीं बतलाया । भगवती पूर्णमासीने भी नहीं बतलाया, यह मैंने उनसे पता लगा लिया है ।’ मैयाने कहा—‘लड़कियोंने ही कोई चुपचाप निर्णय कर लिया है ।’

‘तुम इन सबको डांटती क्यों नहीं हो ?’ वृद्धा बोली—‘इन्हें दूसरे घर जाना है । बड़ोंसे पूछे बिना कोई व्रतादिका निर्णय करनेका स्वभाव नहीं बनना चाहिए ।’

‘तुम तो मुझसे बड़ी हो । राधा तुम्हारी नहीं है ?’ मैयाने कहा—‘मैं उसे डांट नहीं पाऊँगी । तुम ही डांट दो । वह तुम्हारी बात टालती तो है नहीं ।’

‘वह इतनी सीधी, भोली है कि किसीकी बात नहीं टालेगी ।’ वृद्धाने बड़े स्नेह भरे स्वरमें कहा—‘तुम ठीक कहती हो, उसे देखकर किसीका मन उसे डांटनेका नहीं हो सकता । मैं तो उसे जब देखती हूँ, बस देखती रह जाती हूँ । मुझे तो बोलना भी भूल जाता है ।’ आजतक उसे ‘लली’ कहकर भी दुलार नहीं कर सकी ।’

‘अपने बालक कितने सुशील, कितने प्यारे हैं ।’ वृद्धा कुछ क्षण चुप रहकर बोली—‘कोई बालक दीखता है तो मैं उसे भी देखती ही रहती हूँ । बालक ललीसे कम प्रिय नहीं हैं और सब देखते ही पैर छूने दौड़ते हैं । ऐसे बालकोंसे ये छोरियाँ रूठी क्यों हैं ?’

‘मुझे तो कोई रूठी नहीं लगती ।’ एक वृद्धा दासी समीप आ गयी—
‘आप सब पता नहीं छोरियोंको रूठी क्यों बतलाती हैं ? हमारी लाली और

नन्दगाँवकी बालिकाओंपर तो कोई विशेष प्रभाव पड़ना नहीं था । गोपियोंके समान उनका भी स्नेह अपने घरके बालकोंसे बढ़ गया था और नन्द-भवन उनका भी जाना लगभग बन्द हो गया था ।

उसकी सखियाँ रूठना कहाँ जानती हैं ।’

‘ये सब भाइयोंसे रूठी नहीं हैं ?’ वृद्धाने उस दासीकी ओर कुछ आश्चर्यसे देखा ।

‘सबकी सब बछड़े चराने जाते बालकोंपर गवाक्षोंसे चन्दन-अक्षत छिड़कती हैं ।’ वृद्धा दासीने बतलाया—‘जब सायंकाल सब बछड़े लेकर लौटते हैं तो उनपर पुष्प, लाजा, दूर्वाङ्कुर डालती हैं, ऐसे रूठा जाता होगा ?’

‘रानी मैया, यह बूढ़ी है, अतः दूरसे कम देख पाती है ।’ एक प्रौढा दासी बोली—‘मैंने विशाखासे पूछा था और देखा भी है, लड़कियाँ प्रातः-सायं गोपूजन करती हैं । वे केवल बछड़े-बछड़ियोंपर चन्दन-अक्षत या लाजा, दूर्वा डालकर उनका पूजन करती हैं ।’

‘पूजन करने वे गोष्ठमें भी तो जा सकती हैं ।’ वृद्धाने कहा ।

‘विशाखा कहती है कि वे सब बछड़ोंके समीप नहीं जायँगी । बछड़े उन्हें चाटने ही लगते हैं ।’

‘नहीं हैं सब; किन्तु चतुर तो हैं ।’ कीर्ति मैयाने प्रसन्न होकर कहा—‘बछड़ोंकी खुरदरी जीभका स्पर्श उनमें कोई नहीं सह सकती । गोष्ठमें वे न जायँ, यह तो मैंने ही उन्हें कई बार मना किया है । गायें और बछड़े कहाँ समझते हैं कि उनकी जीभ किसीको चाटने योग्य नहीं है । मुझे ही एक बार मेरी धन्याने भुजापर चाट लिया तो कई दिन मुझे वहाँ नवनीत लगाते रहना पड़ा ।’

बात उस दासीकी ठीक थी । लड़कियाँ बालकोंसे बोलती नहीं थीं । उनसे छिपी-छिपी भी रहती थीं; किन्तु उन्हें देखे बिना भी रह नहीं पाती थीं । ललिताने ही श्रीवृषभानु नन्दिनीसे कहा था—‘हम सब छिपकर देख लिया करें तो ?’

‘देख लिया कर और बहुत प्रेम उमड़े तो बछड़ोंसे मिल आया कर ।’ श्रीराधाने हँसकर कहा ।

‘तुम्ही तो कहती हो कि बछड़ोंके पास मत जाना ।’ ललिताने कहा—‘वे सब बहुत ऊधमी हैं । सीधे चाटनेको ही मुँह बढ़ाते हैं ।’

‘एक बार भी तेरे कपोल या भुजाको चाट पावेंगे तो’ श्रीराधाने बात पूरी नहीं की ।

‘मुझे उनके पास नहीं जाना ।’ ललिताका शरीर ही कहाँ ऐसा है कि वह बछड़ेकी जीभका स्पर्श सह सके । वह तो बछड़ेके चाटनेकी कल्पनासे ही कांप जाती है ।

‘तुम नहीं जाओगी तो कोई नहीं जायगी ।’ ललिताने स्नेह भरे मानसे मुख बनाया । उसे लगता है कि उसकी यह सखी आजकल कुछ चिन्तामग्ना दीखती है । यह पहिलेके समान प्रातः-सायं गवाक्षपर बैठने लगे तो कदाचित् प्रसन्न रहने लगे ।

‘तू चाहती है तो चला करूँगी ।’ श्रीराधाको तो अपनी सहेलियोंका तनिक भी खिन्न होना सहन नहीं है ।

लड़कियां गवाक्षोंपर पहिलेके समान बैठने लगीं । वे चन्दन, अक्षत, लाजा आदि लेकर बैठती थीं; किन्तु वे सब बच्चियाँ ही तो थीं । उनको कहाँ एकाग्र होकर कोई निश्चित लक्ष्याकार रखना आता था । प्रातः भी बछड़े ही बालकोंसे आगे कूदते-फुदकते निकलते थे और सायं भी बछड़े ही आगे-आगे आते थे । जिस बछड़ेपर जिसकी दृष्टि पहिले पड़ जाती थी, वह उसीपर चन्दन, अक्षत छिड़कने लगती थी । दृष्टि उस बछड़ेसे हटती ही नहीं थी ।

बछड़ोंमें बछड़ियाँ भी थीं और वे भी बछड़ों ही जैसी थीं । वे सब भी गवाक्षोंके नीचे दौड़ आते थे । वहीं मुख ऊपर उठाये खड़े हो जाते थे । अपने स्वरमें बोलते और कूदकर फिर-फिर वहीं घिर आते थे । जैसे उन्हें भी पता था कि उनका पूजन हो रहा है । वह पूजन स्वीकार करनेमें उन्हें प्रसन्नता होती थी । बालक हँकते भी तो वे एक दो बार मुड़कर आते ही थे ।

लड़कियोंको जो भी बछड़ा दीखता, वही अत्यन्त सुन्दर, मनोहर लगता । वे उसीका ऊपरसे ही सत्कार करतीं । बालक गवाक्षके नीचे आ भी जाते तो बछड़ोंके समान तो पहिले आ नहीं सकते थे । अतः लड़कियोंकी दृष्टि ही उनपर नहीं जाती थी । वे प्रतिदिन प्रातः-सायं बछड़े-बछड़ियोंका ही पूजन-सत्कार करती रहीं । इस पूजनने श्रीराधाको प्रसन्न और सन्तुष्ट बना रखा था ।

‘बालिकाओंको कुछ हो गया है ।’ मैया कीर्तिदाको यह चिन्ता कभी-कभी तंग करती है । बालक घरपर रहते हैं, तब तो बरसानेमें भी किसीको बालकों अथवा बछड़ोंको खिलाने-पिलाने और दुलारनेको छोड़कर कोई बाल स्मरण नहीं आती; किन्तु जब बालक बछड़े घराने चले जाते हैं, तब दिनमें कभी-कभी घर-द्वारका भी ध्यान आता है । मैयाको इसी समय कभी-कभी अपनी ललीकी चिन्ता होती है ।

मैयाको कभी सन्तोष नहीं होता कि उनकी लली और उसकी सखियाँ ठीक भोजन करती हैं । मैया कहती हैं—‘ये सब कहने-सुननेपर, मनानेपर केवल मुख जूठा करती हैं । इतना कम खाती हैं, इसीसे तो सब इतनी दुबली हैं । गोपकन्याको दुर्बल क्यों रहना चाहिए ।’

‘इन दिनों सब पता नहीं क्यों मुझसे भी कम ही बोलती हैं ।’ मैयाकी चिन्ता है—‘सब दिन भर परस्पर ही कुछ गुसपुस करती रहती हैं । उदास रहती हैं । इन्हें खेलते भी नहीं देखती हूँ । यह इनके उदास बैठनेकी आयु है ।’

‘धोड़े दिनोंतक सब बहुत प्रसन्न रहीं ।’ मैया कभी स्मरण कर लेती है—‘सबको दही बेचनेकी धुन चढ़ी थी । इस बहाने तनिक घूम आती थीं, प्रसन्न रहती थीं; किन्तु कबतक यह चल सकता था । वनमें बहुत कपि हैं । वे इन सबोंको डराकर इनका दही खा लेना सीख गये थे । ये सब तो घरमें भी कपि देखकर डरकर भागती हैं । स्वयं दहेंड़ियां फेंककर भागती होंगी । वनमें भागनेपर गिरेंगी भी और वस्त्र झाड़ियोंमें उलझेंगे, फटेंगे । खरोंचें आवेंगी ।’

‘मैंने तो इन्हें कभी रोका या डांटा नहीं । ये सब प्रसन्न रहें तो यह हानि तो कुछ भी नहीं है ।’ मैया सोचती है—‘बालक तो हमारे बहुत भले हैं और नन्दनन्दन तो बहुत ही भला है । वही इन सबोंकी पुकार सुनकर मित्रोंके साथ रोज दौड़ आता था । वही कपियोंको भगाता था और इनके वस्त्रादि सुलझाता था । अब ये लगता है कि वनमें कपियोंके उत्पातसे डर गयीं हैं । वनकी ओर जानेका नाम ही नहीं लेतीं । दिनभर घरमें बैठी-बैठी उदास रहती हैं ।’

बालिकाओंका एक व्यसन इधर और बढ़ गया है । वे बड़े सबेरेसे भाइयोंके लिए कलेऊ बनानेमें लगती हैं । अभी बच्चियाँ ही तो हैं, जो बना पाती हैं, सब मिलकर बनाती हैं और भाइयोंके छीकोंमें अपने हाथोंसे भरती हैं । इतना तो स्नेह है इनका भाइयोंसे । पता नहीं कैसा व्रत करने लगी हैं कि भाइयोंसे छिपी रहती हैं, उनसे बोलती नहीं हैं ।

बालक कलेऊ करके गोष्ठकी ओर निकले और सबकी सब उनके जूठे पात्र उठाने दौड़ पड़ेंगी । आजकल दासियोंको भी वे पात्र ये नहीं धूने देतीं । पात्रको ले जाकर कक्ष बन्द कर लेती हैं और स्वच्छ करके ही लौटाती हैं ।

बरसानेके सभी घरोंमें लगभग यही क्रम चल पड़ा है । घरके बड़ोंको पता भी हो तो कोई बोलता नहीं । लड़कियाँ उन पात्रोंमें जो बचा हो, वही खाती हैं । उन्होंने तो पृथक् भोजन कलेऊ जैसे बन्द ही कर रखा है । यह तो अच्छा है कि बालक ढेर सारी सामग्री कलेऊके समय या शामके व्याख्येके समय मांगते हैं और फिर जूठी छोड़ देते हैं । यह तो बालकोंका स्वभाव है । एक मोदक दो तो कहेंगे—‘मैं दो मोदक लूँगा । अकेला मोदक नहीं खाऊँगा ।’

शामको बालक अपने छीके धरकर हटे नहीं कि लड़कियाँ वे छीके झपट ले जाती हैं । छीकोंमें बचता क्या होगा, वनमें कपि आदि सब पशु तो बालकोंके छीकेकी आशा लगायें रहते होंगे । बालकोंको भी उन सबको देनेमें प्रसन्नता होती है । इतनेपर भी कुछ नन्हें टुकड़े तो बचते ही हैं । बालिकाओंको तो गिलहरियों जितना भोजन चाहिए । वे छीके झाड़ती होंगी तो उनका पेट भरने जितना मिल ही जाता होगा ।

‘तुम सब तो हम लड़कियोंको चाहती ही नहीं हो ।’ चन्द्रावलीने अपनी माताको ही सुना दिया—‘सबको लड़के ही लड़के सूझते हैं । जो कुछ अच्छा मिले, सब लड़कोंके लिए । हम सबने भी सीख लिया है कि लड़कोंको जो मिले, उसीमेंसे झपट्टा मारो । सब स्वादिष्ट उत्तम पदार्थ वहीं मिलेंगे । हमारा भी भाग है लड़कोंको मिले पदार्थोंमें ।’

चन्द्रावलीकी मांसे सुनकर मैया हँसती रही—‘चन्द्रा लाली न कहती तो हमें पता भी न लगता कि छोरियोंको भ्रम हो गया है कि हम सब उनसे कम स्नेह करती हैं । हम सब उत्तम पदार्थ बालकोंको ही देती हैं ।’

‘मेरी लली और उसकी सहेलियां तो जैसे बोलना ही नहीं जानतीं ।’
मैयाने कहा—‘पर यह भी बुरा नहीं हुआ । इस भ्रमसे ये बालिकायें कुछ तो खा लेती हैं ।’

‘इन सबोंको ठण्डा, जूठा-बासी रुचने लगा है, यह कोई अच्छी बात है ?’ मैयाके मनमें यह बात आयी; किन्तु इससे उल्लसित होकर उसने कहा—‘बड़े सौभाग्यकी बात है कि इन बालिकाओंमें अभीसे श्रेष्ठ सतियोंका शील आने लगा है । हमारे घरोंमें नारीका शील उसे सबके भोजन कर लेनेपर अपने आराध्यके उच्छिष्टको उल्लासपूर्वक ग्रहणको उत्सुक बनाता है । बालिकाओंका यह अभ्यास कभी उन्हें प्रथम और ताजा भोजनके प्रति लोलुप नहीं बनावेगा ।’

‘श्रीराधा और उसकी सब सखियां, दूसरी लड़कियां भी आजकल दिन भर करती क्या हैं ?’ मैयाका कुतूहल अकारण नहीं था । उनको वैसे भी अपनी ललीकी चिन्ता सदा रहती है । उनको लली बहुत दुबली लगा करती है । वह दिन भर कक्षमें बन्द रहे तो उदास तो रहती ही होगी, यह समझकर मैयाने एक दासी नियुक्तकी पता लगानेके लिए । उसे सावधान किया—‘बालिकाओंको चौंकाना मत । उनसे कुछ मत कहना । उनके किसी काममें बाधा मत देना । ये बच्चियां तनिकसे कारणसे भी रोते-रोते मुख-नेत्र लाल कर लेती हैं ।’

‘सब बहुत प्रसन्न रहती हैं ।’ दासीने दूसरे ही दिन समाचार दिया—‘उनके पास इतना काम बढ़ गया है कि उन्हें खेलने या किसीसे मिलने-बोलनेका भी अवकाश नहीं है ।’

‘काम बढ़ गया है ?’ मैया चौंकी—‘किसने उन्हें क्या काम बता दिया ? मेरी बच्चियां थकी जाती होंगी । तूने कहा नहीं, तुम सब उनकी सहायता कर सकती हो ।’

मुझे तो ललिताने द्वारपर ही रोक दिया । बोली—‘मौसी, तुम भीतर मत जाओ । हमारी सब सामग्री बिखरी पड़ी है ।’

‘तू पहेली मत बुझा ।’ मैयाने अकुलाहटसे कहा ।

‘उनको काम कौन बतलावेगा । उन्होंने स्वयं अपना काम बढ़ा लिया

हैं और किसीकी सहायता भी स्वीकार करना नहीं है उनमें किसीको ।' दासी अब तक कठिनाईसे अपनी हँसी रोके थी । अब वह हँस पड़ी—'सबको बछड़े-बछड़ियोंके अलंकार बनाने हैं । एक कौड़ी, मूँगा या कोई रत्न उठाती है किसी बछड़ेके गलेकी माला बनानेको तो उनमें देर तक शास्त्रार्थ चलता है कि मूँगा श्वेत बछड़ेको शोभा देगा या काले बछड़ेको ।'

'अच्छा !' मैया भी हँस पड़ी । 'लड़कियोंने काम तो गोप-कन्याके उपयुक्त ही चुना है ।'

'राशि-राशि पुष्प, गुँजा, पिच्छ और जाने क्या-क्या मैंगाली हैं वे लोग ।' दासीने बतलाया—'अब सबने सेवकोंको सीधे आदेश देना सीख लिया है । अन्ततः राजकुमारीकी सहेलियाँ हैं ।'

'सुना तो यह है कि वे पुरुषोंसे मिलती ही नहीं हैं ।' मैयाने प्रसन्नता पूर्वक ही कहा—'पर सेवकोंसे स्वयं अपनी आवश्यकता बस्तुएँ मैंगा लेती हैं, यह तो अच्छा ही है ।'

'पुरुषोंसे उनमें कोई नहीं मिलती । आपकी नटखट नहीं दासी मंगलाको मिला लिया है । अब आपकी सेवामें आती बीजती है आपको ? वही सब लालियोंके आदेश सेवकोंको देती है । वह तो महारानी बन गयी है ।' इस वृद्धा दासीको उससे थोड़ी चिढ़ है । इसलिए भी चिढ़ है कि वह इसे श्रीराधाकी सेवाका अवसर ही नहीं देती और राजसदन आ जाय तो यहाँ भी इसकी सब सेवा झपट लेती है । इसके रुष्ट होनेपर कह देती है—'मौसी, तुम तो अब सेव्य हो गयी हो । अब तो मुझे अपनी सेवाका भी सौभाग्य दे दिया करो ।'

'मंगला सुशीला और सेवा-परायणा है ।' मैया आश्चस्त हो गयी । 'वह बालिकाओंकी सेवामें बनी रहे, यह मेरा आदेश सुना देना ।'

'वह तो बनी ही रहेगी । लालियोंको सब भाइयोंके लिए माल्यग्रन्थन, पुष्पाभरण, केशमें लगानेको पिच्छ किरीट, पता नहीं क्या-क्या बनाने रहते हैं और फिर मंगलासे ही बछड़ों और भाइयों तक उन्हें भेजना रहता है मंगला चकरघित्री बनी दौड़ा-दौड़ करती रहती है; किन्तु मैंने कहा कि मुझसे भी सेवा ले ले तो हाथ जोड़ दिये । मैं क्या ऐसी बूढ़ी हो गयी कि पुष्पमाल्य भी बालकों

तक नहीं ले जा सकती ।

‘तू समझती क्यों नहीं ।’ मैयाने दासीको समझाया—‘बच्चियाँ तेरा सम्मान करती हैं । तेरी उपस्थितिमें संकोच करेंगी । मंगला उनसे बड़ी सही; किन्तु उन्हें सहेली जैसे लगती है । उससे वे निःसंकोच सेवा ले सकती हैं ।’

‘लालियोंने सब बालिका दासियाँ जुटा ली हैं ।’ वृद्धाके स्वरमें सेवा न मिलनेका खेद था—‘अब हम बूढ़ियोंको वे कभी नहीं पूछेंगी ।’

बालिकाओंमें उत्साह था । वे सब बछड़ोंकी सज्जा प्रतिदिन बदलवाती थीं । सब बालकोंके लिए प्रतिदिन शृंगार प्रस्तुत करती थीं और क्या किसे देना है, यह दासियोंको कई-कई बार समझाती थीं । सम्भवतः गवाक्षोंपर प्रातः यह देखने आती थीं कि उनकी बनायी शृंगार सामग्री ठीक सुसज्ज लगती है या नहीं ।

बालकोंको भी लड़कियों द्वारा प्रस्तुत ये सामग्रियाँ बहुत प्रिय थीं । लगता है कि बछड़े-बछड़ियों भी उस शृंगारको प्रस्तुत करनेवाले करोंका प्रेम-पहिचानते थे । वनमें उछलते-कूदते बछड़े भी अपने कंठकी माला गिराते नहीं थे । बालक भी वनमें अब एक दूसरेका शृंगार नहीं करते थे । वे प्रातःकालीन शृंगार ही दिन भर धारण किये रहते थे ।

मैया सन्तुष्ट हो गयी थीं । उसके बालक दिनमें बहुत धूम वन जाकर नहीं करने लगते थे । अन्यथा उनके पुष्पाभरण और केश-शृंगार तो पहिले कभी इस प्रकार बने नहीं रहते थे । लड़कियाँ अब दिन भर यह प्रसाधन-सामग्री बनानेमें व्यस्त रहकर प्रसन्न रहती थीं । उन्हें भी घरसे कहीं बाहर जानेकी धुन नहीं रही थी ।



वन-क्रीड़ा

आपके पड़ोसी अथवा आपके सहचरकी दृष्टि आपके सम्बन्धमें अकस्मात् आपसे मिलनेवालेसे भिन्न होती है। यही बात सृष्टिकर्ताके सम्बन्धमें है। उन्हें कहाँ अपने सृष्टि-कर्मसे अवकाश रहता है कि वे जगतके किसी स्थान अथवा उसके निवासियोंकी ओर पूरा ध्यान दे सकें।

आपने कभी सोचा है कि ब्रह्माजीका काम कितना स्वतःचालित है। ब्रह्माजी कोई हैं भी या नहीं, इसमें भी लोगोंको सन्देह है। यह उनका दोष नहीं है छुद्रताका-अल्प होनेका। हमारे रक्तके प्रत्येक बिन्दुमें जो अरबों कीटाणु हैं, वे अथवा उनमें कोई जानना भी चाहे कि वह किसके शरीरमें है तो उसके पास कोई उपाय है ? वह बेचारा क्षणजीवी, उसके पास जाननेका अवकाश है ?

आप ही जानना चाहो कि आपके रक्ताणु कब उत्पन्न होते और क्या-क्या करके कब मरते हैं तो ऐसा कर पावेंगे ? आपका शरीर कैसे व्यवहार करता है, इसका आपको केवल सामान्य ज्ञान है। भोजन गलेसे नीचे गया तो उसका नमक, चीनी, खटाई, दूध आदि कहाँ-कहाँ कैसे पचा, पहुँचा या परिवर्तित हुआ, इसका भी केवल सामान्य ज्ञान चिकित्साशास्त्रको है।

शरीरकी भाँति सृष्टि भी स्वतःचालित है। कर्म-योनिका प्राणी अनन्त-अनन्त कर्म करता है। प्रतिक्षण वह मन, वाणी या शरीरसे, जब सुप्त या मूर्छित न हो, कुछ करता ही रहता है। उसके कर्म सक्रिय-सुषुप्त दोनों प्रकारके होते हैं। सक्रिय-कर्म तत्काल सृष्टिमें हलचल मचाते रहते हैं और सुषुप्त कर्म जिन्हें आप कर्म-संस्कार कहते हो, समय-समयपर फलदानोन्मुख होकर अपने कर्ताको क्रियोन्मुख करते रहते हैं।

मनुष्यको ही सृष्टिमें कालान्तरमें चर-अचर सब होना पड़ता है; किन्तु अपने सुषुप्त कर्मोंका हमें कहाँ पता है। वे तो संचित हैं। उस संचितका केवल एक छोटा भाग प्रारब्धके रूपमें सक्रिय है। लेकिन सुषुप्ति या मूर्छाके अतिरिक्त केवल उच्च साधक या सिद्ध-पुरुष शरीरको विस्मृतकर पाते हैं। मनको एकाग्र करके भगवानमें लगा पाते हैं।

यह ब्रह्माण्ड (एक सौर जगत) ब्रह्माजीका शरीर है । यह शरीर भी स्वतःचालित है; किन्तु निद्राके अतिरिक्त इससे ब्रह्माजीको अवकाश नहीं है । उनकी निद्राको ही हम-आप प्रलय कहते हैं ।

ब्रह्माजीका एक क्षण बीता था; क्योंकि उनका एक दिन तो एक सहस्र चतुर्युगीका होता है । जब उन्होंने ब्रजमें बछड़े और गोपकुमारोंका हरण किया और जब उन्हें लौटाया, उस अवधिमें एक मनुष्य-वर्ष पूरा होनेमें तीन-चार दिन शेष थे । यह अवधि ब्रह्माजीके लिए त्रुटिके समान ही तो होगी । अतः इस अवधिमें ब्रजकी श्रीकृष्ण-लीलामें कोई सूक्ष्म परिवर्तन भी हुआ तो उसपर ब्रह्माजीका ध्यान नहीं गया । जा भी नहीं सकता था । ब्रह्माजी अपने समयमानसे एक त्रुटि (क्षणका सत्ताइसवाँ भाग) बाद आये थे । उन्होंने—

‘पुरोवदद्वं क्रीडन्तं ददशे सकलं हरिम् ।’

(भा० १०-१३.४०)

सब गोप बालकोंको भी हरिके साथ पहिले वर्षके समान ही खेलते देखा ।

यह ‘पुरोवदद्वं’ पहिले वर्षके समान ब्रह्माजीकी दृष्टि है । उन्हें कोई सूक्ष्म अन्तर नहीं दीखे अथवा उस अन्तरपर उनका ध्यान ही नहीं गया । लेकिन उस अन्तरपर ध्यान दिया जा सकता है ।

मनुष्य-बालकका शरीर भी एक वर्षमें इतना बढ़ता है कि यदि वह न बढ़े तो माता-पिता तथा समीपके लोग चिन्ता करने लगते हैं । गायोंके बछड़े-बछड़ियोंका शरीर तो बहुत बढ़ जाता है । यह वृद्धि चलती न रहती तो सब गोप-गोपियोंका उसपर ध्यान जाता । गायोंमेंसे बहुतोंने दूसरे बच्चे दे दिये थे और उनके पहिले बछड़े-बछड़ियोंने माताका दूध पीना छोड़ दिया था । वे घास-चारेपर रहने लगे थे ।

‘मुक्तस्तनेष्वपत्येषु’

(भा० १०।१३.३५)

३ त्रुटिका १ लव, ३ लवका १ निमेष, ३ निमेषका १ क्षण ।

(भा० ३०।११.६,७)

बालकोंके बड़े आकारपर ध्यान न जाय तो भी बछड़े-बछड़ियोंके बड़े आकारोंपर ध्यान जाना चाहिये; किन्तु ब्रह्माजीका ध्यान इसपर भी नहीं गया। वे तो इस आशामें लौटे थे कि उन्हें श्रीकृष्ण अकेले या दाऊजीके साथ चिन्तित मिलेंगे; किन्तु उन्होंने जब सब बालक और बछड़े देखे तो भौचक्के रह गये। उनको लगा—‘यहाँ तो सब पहिले जैसा ही है।’ वे यह भी भूल गये कि वत्स-हरणके समय दाऊजी नहीं थे और इस समय अपने अनुजके साथ हैं।

इस प्रकार भले वन-क्रीड़ा ब्रह्माजीको पहिले जैसी ही लगती हो; किन्तु पहिले जैसी थी नहीं। ब्रह्माजी ठहरे ब्रह्मलोक रहनेवाले, वे गोपकुमारों और उनके नटखट सखाकी लीलाकी सूक्ष्मता क्या जानें; किन्तु आपका मन यदि इस मयूर-मुकुटीके साथ रहता हो तो आप समझ सकते हैं कि जैसे नन्दगाँव तथा बरसानेके लोगोंके व्यवहारमें, गायों-वृषभोंके व्यवहारमें अन्तर पड़ा, सबने जैसे नन्द-नन्दनकी उपेक्षा कर दी और अपने घरके बालकों एवं बछड़ोंपर प्राण न्यौछावर करने लगे, वैसे ही वत्स-हरणके दूसरे दिनसे ही वन-क्रीड़ामें भी बहुत अधिक अन्तर पड़ गया।

वत्स-हरणवाले दिन सायंकाल ही सब बालक अपने-अपने बछड़े अपने-अपने गोष्ठ हाँक ले गये थे। वनके पशु-पक्षी उस दिन सदाकी भाँति श्रीकृष्णके साथ नहीं गये। उनका समूह पृथक्-पृथक् हो गया। जिस वन पशु या पक्षीको जो गोप-बालक या बछड़ा समीप मिला, वह उसीके साथ लग गया और सबेरे भी यही हुआ। नर-नारी, पशु-पक्षी सबके आकर्षणके केन्द्र सब बालक और सब बछड़े हो गये। इसमें श्रीकृष्ण अकेले पड़ गये। उनकी ओर केवल दाऊका आकर्षण था।

वनमें अब वहाँके पशु-पक्षी एक ही स्थानपर भीड़ लगाये नहीं रहते थे। वे सब बालकों अथवा बछड़ोंके साथ घूमने लगे। किसीके साथ दो-चार और किसीके साथ सौ-पचास। कपि-भल्लूक आदि अब किसी बालकको फल-कंद बड़े स्नेहसे अर्पित करते थे। मयूर किसी बछड़ेके सामीप्यमें भी नृत्य करने लगते थे। शशक, गिलहरियाँ, पक्षी अब बछड़ोंके शरीरपर कूदते-फुदकते और उनके साथ खेलनेमें मग्न रहते थे।

बालक भी मस्त मौला हो गये थे। वे पिच्छ, फल आदि पाकर अब

कन्हार्लको देने या सजाने नहीं दौड़ते थे । वे अपना या किसी बछड़ेका शृंगार करने लगते थे । उनके करमें आया फल वे किसीको भी दे देते थे ।

अब भी सब बालक साथ ही खेलते थे, प्रायः साथ ही रहते थे, एक दूसरेको वन-धातुओं तथा गुंजा-किसलय-पिच्छसे सजाते भी थे; किन्तु अब कन्हार्लको ही सब सजावें; यह उत्सुकता उनमें नहीं रही थी । कन्हार्ल थोड़ी दूर जाय तो उन्हें स्पर्श करने दौड़नेकी स्पर्धा अब नहीं होती थी ।

वन-भोजन सब साथ ही करते थे और अब भी उनकी मण्डलीके मध्यमें दाऊ-कन्हार्ल बैठते थे । हास-परिहास, थोड़ी दौड़-धूप भी चलती थी; किन्तु पहिले जितना नहीं । अब अपने छीकेकी सब वस्तुएँ ब्रजराजकुमारको ही अर्पितकर देनेकी आतुरता नहीं रही थी ।

बालक खेलनेमें लगे हों या वन-भोजनमें, अब बछड़े-बछड़ियाँ उन्हें घेरकर अपनेको सहलानेपर विवश नहीं करते थे । प्यास लगनेपर प्रत्येक बछड़ा, या बछड़ी कन्हार्लको ही सिरसे ठेले उसीसे झगड़े, अब ऐसा नहीं था । अब तो जो बालक पास हो, उसीको सिरसे ठेलकर वे संकेतकर देते थे और अब सब बालक उनका संकेत झटपट समझ भी लिया करते थे ।

बछड़े-बछड़ियाँ अब चरनेमें लगना हो तो परस्पर खेलते, धमा-चौकड़ी करते अथवा बैठे-खड़े रोमन्थन करते या नींद लेते थे । अब कन्हार्ल विश्राम करे तभी सब विश्राम करें, ऐसा कोई अकथित नियम नहीं रहा था ।

‘तू थक गया है ।’ इस सखाओंके उपालम्भसे अब कन्हार्लको छुटकारा मिल गया है । अब उसके लिए कोई भी वृक्षमूलमें पल्लव-तल्प नहीं सजाता और न कोई पाद-संवाहन करने या कमल-पत्र लेकर वायु करने आता । वह चाहे जब, चाहे जहाँ दूर्वापर लेट लगा सकता है ।

अब कन्हार्ल भी बहुत सीधा हो गया है । दूसरे सखाओंसे तो दूर, अब श्रीदामसे भी नहीं झगड़ता । श्रीदाम अपनी ओरसे तो उसे कभी छेड़ता नहीं था । अब यह नटखटपन नहीं करता तो श्रीदाम क्यों झगड़ेगा ।

बालक जैसे प्रतिस्पर्धात्मक खेल भूल ही गये । जब खेल प्रतिस्पर्धाके नहीं होंगे तो हार-जीत और दांव लेने-देनेका झगड़ा ही क्यों होगा । अब तो सब परस्पर मल्ल-युद्ध भी नहीं करते । नाचेंगे, गावेंगे, दौड़ेंगे अथवा दोनों

हाथ फैलाकर गोल-गोल घूमेंगे ।

अब भी मेंढकोंके साथ वैसे ही कूदते हैं, मयूरोके साथ नाचते हैं, कपियोंकी पूँछ खींचते हैं या उनके साथ वृक्षोंकी डालियोंपर चढ़ते हैं । लेकिन अब सब अपेक्षाकृत कम धूम करते हैं ।

लड़कियोंने वनमें आना बन्दकर दिया है और अब कोई उनकी चर्चा भी नहीं करता । अब कन्हाई केवल सायंकाल वनसे लौटते समय वेणु-वादन करता है । वनमें तो किसी सखाको सिखलानेके लिए भी वंशी नहीं बजाता । अब वह बछड़ोंको पुकारनेके लिए भी शृंग बजाने लगा है ।

बछड़ोंमें कोई कुछ दूर चला जाय तो अब प्रायः कन्हाई ही उसे घेरकर लौटाने अपना वेत्र-लकुट लिये जाता है । अब उसे कोई रोकता नहीं और अब वह भी किसी सखाको बछड़े लौटानेको नहीं कहता ।

यद्यपि कोई सखा कन्हाईको बछड़े घेरनेको नहीं कहता; किन्तु यह तो उससे पहिले भी कोई नहीं कहता था । पहिले वह बछड़ोंकी ओर ध्यान ही नहीं देता था । अब वह सबसे अधिक बछड़ोंका ध्यान रखता है और सबसे पहिले उन्हें लौटाने दौड़ता अथवा पुकारता है । अतः अब बछड़े-घरानेका श्रम सबसे अधिक कन्हाई ही करता है । अब इसका यह शौक जी भरकर पूरा हो रहा है ।

अब वनमें छाक तो आती नहीं । सब बालकोंने अघासुर वधके दिनसे ही वन-भोजनका क्रम अपनाया तो अपना ही लिया । सबके सब बहुत हठी हो गये हैं । सब गोप-गोपियाँ अपने बालकोंको प्रायः प्रतिदिन मना करते हैं कि वनमें दूर न जायँ । बछड़ोंको शीघ्र लौटा लाया करें और दोपहरका भोजन न ढोयें । उन्हें छाक पहुँचा दी जायगी; किन्तु सबके सब ये बातें सुनना ही नहीं चाहते । सब प्रातः अपने छीके भरवाकर ले जाते हैं । इससे सबोंको वनमें चाहे जिधर जानेकी स्वतन्त्रता मिल गयी है । छाक आती थी तो समीप और पहिलेसे बतलायी दिशामें रहना पड़ता था । अब छीके भरे हैं तो चाहे जिधर सब बछड़े हाँक देते हैं और वनमें भी भीतर दूर निकल जाते हैं । जब तक सायंकाल ही न होने लगे, सबोंको घर लौटनेका स्मरण ही नहीं आता ।

अवश्य एक बात विशेष हुई । ब्रह्माजीके इस वत्स-हरण कालमें कंसको ब्रजमें किसी असुरको भेजनेका स्मरण ही नहीं आया । आप इसे योगमायाका लीला-कौतुक कह सकते हैं; क्योंकि कंस पहिले भी असुर भेजता रहा था और पीछे भी उसने अपने दैत्य-भट भेजे ही । उस समय किसी दानव दुष्टके भी मनमें ब्रज देखनेकी इच्छा नहीं जागी ।

कन्हाई तो उस वर्ष नटखटपन छोड़कर बहुत सीधा बन गया था । ब्रह्माजीको ही अपना माया-कौशल कहिये या सृष्टि कला दिखलानेमें जुटा था । अतः किसी देवताको छेड़नेकी बात नहीं सोच सका । कालिन्दीमें बसे कालियनाग और सुरेन्द्रको सीधा करनेकी बात उसने पीछे सोची ।

नन्दब्रज और बरसाना उस वर्ष आनन्दके महोदधिमें मग्न था । सब घर और सब गोष्ठोंमें परिपूर्ण परमानन्द शत-सहस्र रूप बनाये क्रीड़ाकर रहा था । विश्वकी परम नियन्त्री भगवती योग-माया अपने आराध्यके इस स्वजन-परितोषणकी लीलामें किञ्चित् भी विक्षेप नहीं आने दे सकती थीं । अतः कोई आधि-व्याधि, सुर-असुर ब्रजकी ओर उस समय मुख करे, यह उन्हें सहन नहीं था और सृष्टि तो उनके संकेतसे संचालित है ।

एक वर्षकी अवधि अल्प नहीं होती । उसमें सब ऋतुएँ आनी थीं । सब पर्व पड़ने थे । अनेक महोत्सव होने थे और सब हुए; किन्तु सब शान्त, निर्विघ्न हुए । सबने गोपों, गौओं को अधिकाधिक आनन्द ही दिया । कोई नन्ही समस्या भी उत्पन्न नहीं की ।

वनमें बसन्तका पुष्पोत्सव वृक्ष-लताओंने मनाया अथवा ग्रीष्ममें पल्लव, फल-भार प्राप्त किया, सबके द्वारा वन देवताने सोल्लास अर्चन किया शत-शतरूपोंमें अपने यहाँ उपस्थित उस सच्चिदानन्दघनका ।

पावसमें गगनने मेघोंकी दुन्दुभियाँ बजायीं और विद्युत्की फुलझड़ियोंके साथ धराका बार-बार धराभिषेक किया । बालक और बछड़ोंके रोमोंको अपने सीकरोंके हीरककणोंसे जी भरकर सजाया ।

शरद, शिशिर और हेमन्तने स्वच्छ जलाशयमें पद्म प्रस्तुत किये । उल्लासमें उछलते, कूदते बालकों तथा बछड़ोंसे सदा शीत दूर रहता है । उन्हें नो पक्व-फल प्राप्त होते रहे । सुमन-गुंजा मिलते रहे । पक्षि-समूह मयूरोंके

साथ पृच्छार्पण करके अपने संगीतसे उन्हें सुप्रसन्न करता रहा ।

भूमि सूखी तो बालकोंको धूलि-क्रीड़ा मिली । वर्षा हुई तो जलमें छपाछप दौड़ने, बहते जलमें पुष्प-पल्लव बहानेका महोत्सव मनाया । गुफामें एक साथ बैठ सके तीव्र दृष्टिमें अथवा नभके धारासारमें स्नान किया ।

शीत-ऋतु तो पुलिनपर क्रीड़ाकी ऋतु है । आतप आनन्द देता है । अकुलाहट और स्वेदकी चिन्ता छूट जाती है । बालकोंको कौन-सी ऋतु है जो प्रिय न लगे । वृद्धोंको ग्रीष्ममें लूका, वर्षामें भीगनेका और शीतमें सर्दी लगनेका भय होता है । झुर्रीदार चर्मपर सर्दी, गर्मी, वर्षा सब सटती हैं; किन्तु शैशव सबसे खेल लेता है । यह तो साधारण स्थिति है । उस समय तो आनन्दकंद ब्रजमें उन्मुक्त क्रीड़ाकर रहा था । अनेक रूपोंमें क्रीड़ाकर रहा था । सृष्टि उसकी सेविका ही तो है । वह सुयोग ही उपस्थित कर सकती है ।

सब बात सच; किन्तु मुझे लगता है कि ब्रजका सबसे उत्तम वर्ष होकर भी कन्हाईका सबसे बुरा वर्ष था वह । यदि पुष्पोंकी घाटीमें कोई पक्षी चहकने, कोई भ्रमर गुनगुन करने, कोई तितली नाचने और कोई यात्री यह सब देखने न पहुँचे—घाटी जमकर फूले भी तो क्या भव्य हुई ?

मधु हो या अमृत, उसके सरोवर भरें या सागर उमड़े, उसका आस्वादन करने कोई, न पहुँच सके वहाँ—आपको वह भला लगता है ?

सौभाग्य ब्रजका कि वहाँ असंख्य रसिक आस्वादक थे । सब परिपूर्ण परमानन्दमें निमग्न हो रहे थे; किन्तु वह परमानन्द स्वयं बूढ़े ब्रह्माजीको परितुष्ट करनेके चक्करमें उपेक्षित हो गया था । घरमें—ब्रजमें औरोंकी बात तो दूर, बाबा और मैया भी पूरा ध्यान अपने नीलमणिकी ओर नहीं दे पाते थे । उनके स्नेहमें भी अपने ही गोष्ठके बछड़े-बछड़ियाँ साझीदार बन गये थे । उनमें कोई सामने हो तो बाबा-मैया अपने ही अंकधनको विस्मृत हो जाते थे ।

श्रीवृषभानु-नन्दिनीके करकी गुम्फित माला, उनकी सहेलियोंका अर्चन श्रीकृष्णका स्वत्व और उससे भी वे वंचित । उसे भी बरसानेके बालक या बछड़े प्राप्त कर लेते थे और नन्दतनय बोलना तो दूर, रूठनेका नाट्य भी नहीं कर सकते थे ।

वृन्दावनकी वनश्री शाश्वत श्रीकृष्णकी श्रृंगार-सेविका । वे पुष्प, वृक्ष,

लताएँ, पशु-पक्षी अब किसी भी गोपकुमार और बछड़ेके लिए अपना सर्वस्व लुटा रहे थे । श्रीकृष्ण उन सबके लिए भी सामान्य हो गये थे ।

श्रीकृष्णकी सहज चञ्चलता जैसे इस सबसे संकुचित हो गयी थी । अब वे प्रायः वनमें अपने अग्रजके समीप ही दौड़ आते थे । दाऊसे ही लिपटते, उन्हींके साथ लगे रहते, उन्हींको सजाने, खिलानेमें लगे रहते । उनके लिए पल्लव-तल्प बनाते । उनको विश्राम कराते । उनका पाद-संवाहन करते या कमल-पत्रसे उन्हें व्यजन करते । कन्हाईकी वन-क्रीड़ाके केन्द्र दाऊ बन गये थे ।

• • •

दादाके लिए

अच्छी कोई वस्तु दीखनी चाहिये, बस कन्हाईको उसे लेनेकी धुन चढ़ेगी और धुन उसे अपने लिए कभी नहीं चढ़ती । शैशवमें भी ब्रजराजकुमार अपने लिए कदाचित् ही कुछ चाहता हो; किन्तु कहता सदा यही है—‘मैं लूँगा, मुझे चाहिये, मुझे दे ।’

मिल जाय तो किसीको भी दे देता था । किसी सखाको, किसी गोपीको, अथवा जिस मैयासे मचल रहा था, उसीको ही इसे देना था । उसीको खिलाने या सजानेकी धुन चढ़ी थी ।

‘तुझे किसके लिए चाहिये ?’ मैया पूछे, बाबा पूछे, सखा पूछें या कोई पूछे, कन्हाई है ही ऐसा कि इसका ठीक उत्तर कभी नहीं देगा । कदाचित् तब तक यह भी न जानता हो कि किसके लिए इसे चाहिये ।

‘मुझे चाहिये !’ इसका तो एक ही उत्तर होता है ।

कभी बहुत छोटी रोटी चाहिये और कभी बहुत बड़ी । इतनी बड़ी कि मैयाको भी हैरान कर लेगा । कभी नन्हा-पुष्प चाहिये और कभी बहुत गम्भीर हृदके मध्यमें खिला सहस्रदल । क्या चाहिये—यह कुछ ठिकाना नहीं । जब जो इसे रुच जाय । जब जो सूझ जाय ।

इसका बहुत नन्हा-सा मुख है और मुखमें पूरा ग्रास देना इसे कभी नहीं आया । रोटी तोड़े या माखन उठावे, दधि-भातका एक ग्रास इसके हाथपर धर दो तो भी अंगूठे, तर्जनीसे तनिक-सा दो चावल जितना उठाकर मुखमें देगा । चार-छः बार मुखमें डाला और इसका छोटा-सा पेट भर जायेगा । लेकिन मैयासे दोनों हाथ फैलाकर बहुत बड़ा मोदक माँगेगा और बड़ा मोदक दोनों करोंमें लेकर मधुमंगलके मुखमें एक ही बारमें भर देनेको मचलेगा—‘तू मुख खोल ! खूब बड़ा मुख खोल !’

अब इधर इसे एक ही धुन है । कुछ इसे चाहिये तो केवल दादाके लिए । पुष्प, पल्लव, पिच्छ, गुंजा, फल, जो भी अच्छा लगे इसे, सब दादाके लिए । पहिले तो वस्तु हाथमें आ जानेपर इधर-उधर देखता था और तब इसे पता लगता था कि वह किसे देना है, किसके लिए चाहिये थी; किन्तु इन दिनों तो मैया, बाबा और दूसरे भी जानते हैं कि इसे अपने दादाके लिए ही सब चाहिये । संसारमें जो मधुर, स्वादिष्ट, सुन्दर है, सब—वह सब जो इसे दीख जाय और रुच जाय, इसको अपने दादाके लिए चाहिये ।

यह धुन इन दिनों कन्हाईको ही चढ़ी हो, ऐसी बात नहीं है । यह सब गोप-बालकोंकी धुन है । किसी बालकको कोई भोज्य-पदार्थ, कोई खिलौना, कोई वस्त्र या मणि चाहिये और वह उसे लेने दौड़ा है अथवा उसे पानेको अपने किसी स्वजनसे मचल रहा है तो पक्की बात है कि वह वस्तु उसे अपने लिए नहीं चाहिये । वह उसे चाहिये दादाके लिए और ब्रजमें दादा तो एक ही है—दाऊदादा ।

बालक-बालिकाओंमें अनेकोंके बड़े भाई हैं । आयुमें अपनेसे बड़े बालकोंको छोटे बालक दादा ही कहते हैं; किन्तु उनको उनके नामके साथ दादा लगाकर पुकारते हैं । केवल दादा कहें तो वह दाऊको कहेंगे ।

पहिले तो ब्रजमें सब नर-नारी, बालक-बालिकाओंको धुन थी कि उन्हें जो चाहिये, कन्हाईके लिए चाहिये । आपने पूर्णकाम महापुरुषकी चर्चा पढ़ी या सुनी होगी । ब्रजमें जैसे सब पूर्णकाम और साथ ही नित्य अतृप्त-काम थे । किसीको कभी अपने लिए कुछ नहीं चाहिये और सदा, सब कहीं चाहिये, कुछ भी श्रेष्ठ, कुछ भी सुन्दर चाहिये कन्हाईके लिए । सबके सब अपनेको

कंगाल अनुभव करते । कन्हैयाको देने योग्य उन्हें कुछ लगता ही नहीं था ।

अब भी सब वैसे ही हैं । लेकिन बाबा और मैयाको तथा माँ रोहिणीको छोड़ दें तो किसीको कन्हैया इन दिनों भूले-भटके ही स्मरण आता होगा । सबको सब समय कुछ श्रेष्ठ, सुन्दर पानेकी धुन वैसे ही चढ़ी रहती है । किसीको अपने लिए कुछ नहीं चाहिये । सबको चाहिये अपने बालकोंके लिए और बछड़ोंके लिए । इसमें मैया, बाबा, माँ रोहिणी भी अपवाद नहीं हैं कि उन्हें दिनमें दस बार कन्हैया स्मरण आता है तो सहस्र बार अपने बछड़े स्मरण आते हैं । अन्ततः कन्हैया अकेला और बछड़े तो सैकड़ों हैं । उन बछड़ोंके लिए भी बहुत कुछ चाहिये । उनके कण्ठमें शोभित हो सके । ऐसी मणि, ऐसा आभरण, ऐसी सुकोमल सुरंग रज्जु किसीको कोई जान नहीं पड़ती है ।

अवश्य इस विषयमें सब बालकोंकी रुचि सब गोप-गोपियोंसे भिन्न हो गयी है । वे पहिले तो कुछ बछड़ोंकी चिन्ता भी करते थे; किन्तु अब वह भी उनमें दीखती नहीं । अब उन्हें केवल दादाके लिए कुछ चाहिये ।

बड़े कहते हैं—‘बालक अनुकरण-प्रिय होता है । उसपर संग-साथका बहुत प्रभाव पड़ता है ।’

सब बालक पहिले कन्हैयाके साथ लगे रहते थे । श्यामको सजानेमें जुटे रहते थे । अब इस कन्हैयाको ‘दादाके लिए’ की धुन चढ़ी तो सबको यही धुन चढ़ गयी । अब किसी बालकको कुछ प्रिय वस्तु मिल जाय तो वह दाऊदादाके पास दौड़ता है ।

श्याम और उसके सब सखा खेलते समय भी बार-बार दाऊको देख लेते हैं । दाऊ कहीं बैठा हो तो सब थोड़ी-थोड़ी देरमें उसके समीप दौड़ आते हैं । कोई उसके कण्ठमें भुजा डालकर लिपट जाता है, कोई उसकी भुजा अपनी भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगाता है । कोई उसके कन्धेपर सिर रखता है और कोई अंकमें । कोई पाद-संवाहन करने लगता है और कोई भुजा संवाहन या केश-शृंगार । सबको बार-बार, कुछ क्षणोंके ही अन्तरसे दाऊका सान्निध्य, दाऊकी सेवा, दाऊका सत्कार अतिशय प्रिय हो गया है ।

दाऊदादा कहाँ कन्हैयाके समान चञ्चल है कि इधर-उधर दौड़ता, फुदकता या नाचता फिरेगा । उसे तो खेलमें भी सखा आग्रह करके लगावें

तब लगना पड़ता है । इतने सखाओंके रहते उसे कोई बछड़े घेरनेमें लगने देगा ? वह तो वनमें आकर किसी वृक्षके नीचे या कुञ्जमें बैठ जाता है । उसे चुपचाप देर तक स्थिर बैठे रहनेमें कुछ भी अटपटा नहीं लगता ।

आप जानते हैं कि बड़े-बड़े जटाधारी योगी भी आसनपर बैठते ही आसन स्थिर रहे, इसके लिए 'अनन्त समाधि' का आश्रय लेते हैं । यह अनन्त समाधि क्या ? दाऊ कैसे स्थिर शान्त बैठा रहता है, इसका कुछ क्षण ध्यान । आपके ध्यानमें बैठा दाऊदादा आ जाय तो आपका आसन स्थिर हो जाय ।

दाऊदादा स्थिर बैठा रहता है । कन्हाई और दूसरे सब सखा तनिक देरमें आते हैं दौड़े-दौड़े उसके समीप । दस-बीस आते ही रहते हैं और उनमें कोई चुपचाप धीरेसे नहीं आता । सब प्रायः दौड़े आते हैं, चिल्लाते-पुकारते और कुछ कहते आते हैं ।

कोई आकर पीछेसे कंठमें दोनों भुजाएँ डालकर लिपट गया और कानसे मुख सटाकर कुछ कह रहा है । कोई अंकमें सिर रखकर लेट गया है । कोई भुजाओंसे लिपटा है और कोई पाद-संवाहनमें जुट गया है । कोई केशोंमें पुष्प या पिच्छ सजा रहा है तो कोई भुजा या पीठपर वन-धातुओंसे चित्रांकन करनेमें लगा है । कोई कमल-पत्रसे व्यजनकर रहा है तो कुछ पल्लव-तल्प सजानेमें जुटे हैं ।

सब छोटे बालक हैं । वे सेनाके सैनिक नहीं है कि क्रमबद्ध चलें या बारी-बारीसे बोलें । अनेक अपनी-अपनी बातें कह रहे हैं । अनेक अपना संगीत सुना रहे हैं या नाच रहे हैं । अनेक कोई आसन—मयूरासन, वृश्चिकासन आदि करके दिखाते हैं तो अनेक कूदते, कलामुंडी खाते या मल्ल-युद्ध ही करते अथवा लाठी धुमाते हैं ।

सबको अपनी बात कहनी-सुनानी है, अपने ढंगसे दादाकी सेवा करनी है, अपनी कला दिखलानी है अथवा कोई दृश्य, पशु-पक्षी दिखलाना है ।

बालक ही नहीं, बछड़े भी चरते-चरते बार-बार दौड़ आते हैं दाऊके समीप । वे भी दाऊदादाको सूँघते हैं, उनके सम्मुख फुदकते हैं अथवा उनसे सटकर बैठ जाते हैं । बछड़े या बालक चाहे जब दौड़े आते हैं और चाहे जब वहाँसे चरने या खेलने चले जाते हैं; किन्तु दाऊ दो क्षण भी अकेला

नहीं रह पाता । उसके समीप बछड़े-बालकोंका समुदाय घिरा ही रहता है ।

कन्हवाई भी आता है, बार-बार आता है । उसे भी कुछ कहना होता या कुछ दिखाना होता है । वह भी बड़े भाई की अलकोंमें पुष्प या पिच्छ सजाता है या अंकमें सिर रखकर दो क्षण लेटता है । अनेक बार वह अग्रजकी स्तुति करता है ।

दाऊ दादा तो स्नेहकी मूर्ति है । सब सखाओं तथा बछड़ोंपर उसका समान स्नेह है । बैठा-बैठा मुस्कराता रहता है । बहुत कम बोलता है । कन्हवाई या सखा दूरसे पुकारें—पुकारते ही रहते हैं; किन्तु दाऊदादा बोलता नहीं । चुपचाप मुस्कराता रहेगा और पुकारनेवालेकी ओर देख लेगा कभी बीचमें दृष्टि उठाकर ।

समीप आये सखाओंमें सबको लगता है कि दादा उनकी बात पूरे ध्यानसे सुन रहा है । सबको लगता है कि दादा उनका संगीत ध्यानसे सुनता है । उनका नृत्य या लाठी घुमाना आदि एकाग्र होकर देखता है ।

कभी-कभी दादा किसीकी अलकोंपर या मुखपर, पीठपर हाथ फिरा देता है । कभी किसीसे दो शब्द कह देता है । सदा बहुत थोड़े शब्द कहता है । लेकिन किसीको कुछ कहे तो बालक उसकी बात अविलम्ब मान लेते हैं । दाऊदादाका आदेश भी टाला जा सकता है । यह कल्पना ही बालकोंके मनमें कभी नहीं उठी; किन्तु दादा कदाचित् ही आदेश देता है ।

सखा तो दादासे आग्रह करते ही रहते हैं । कन्हवाई ही कभी दादाके कर खींचता है—‘तू बैठे-बैठे थक गया है । पल्लव-तल्पपर शयन कर । मैं तेरा पाद-संवाहन करूँगा ।’

बालक कभी साथ खेलनेका आग्रह करते हैं और कभी अपने साथ चलकर कोई पशु-पक्षी अथवा उनकी कोई कला देखनेका । दादा प्रायः सखाओंका आग्रह टालता नहीं; किन्तु किसीके आग्रहसे खेलमें लगे या कुछ देखने उठे, देर तक उसमें नहीं लगेगा । वह तो झटपट ऐसे लौट पड़ेगा, जैसे केवल कर्तव्य-पालन करने उठा हो । सखाकी पीठ थपथपा देगा या थोड़े शब्दमें उसकी प्रशंसाकर देगा ।

सखाओंके साथ स्नान भी कर लेता है । अनेकोंकी पीठ धो देता है

और बछड़े तो जलमें उसे घेर ही लेते हैं कि वह उनमें-से सबके शरीर मले । अनेक बार सखा उसे पुलिनपर लिटा देते हैं और सब मिलकर उसे रेणुका-राशिमें ढकनेका प्रयत्न करते रहते हैं ।

पहिले तो बालक झगड़ भी लेते थे । गोप बालकोंमें परस्पर खेलमें भी विवाद नहीं होता । यह कन्हाई ही नटखट है । यही चाहे जिससे उलझता रहता था । ऐसे सब झगड़े दादा ही सुलझाता था; किन्तु अब कन्हाई सीधा हो गया है तो झगड़ा होता ही नहीं । दादाको अब विवाद नहीं निबटाना पड़ता ।

पता नहीं क्यों अब सबोंको स्पर्धात्मक खेलोंसे अरुचि हो गयी है । पहिले स्पर्धात्मक खेल होते थे तो एक पक्ष दादाका और एक कन्हाईका । दादा सब बलवान और दौड़ने आदिमें तीव्र, चतुर बालक कन्हाईकी ओर कर देता था; किन्तु कन्हाई इतना भोला, सुकुमार है कि प्रायः इसीके कारण सदा इसके पक्षको हारना ही पड़ता था ।

अब तो कन्हाई और दूसरे बालक खेलमें भी दाऊदादाके विपक्षमें रहना स्वीकार ही नहीं करते और जब दो दल ही नहीं बनेंगे तो स्पर्धात्मक खेल होंगे कैसे ?

दाऊदादा तो जन्मसे ही सब सखाओंसे एक जैसा स्नेह करता है । सब दादाका सम्मान करते हैं । गोप-जाति अपने बड़ोंका सम्मान करना खूब जानती है । दाऊदादाका सम्मान तो वृद्ध-गोप भी करते हैं । कन्हाई सदासे अग्रजके साथ ही रहनेका अभ्यासी है । वह दादाके पीछे, पार्श्वमें या नाचता-कूदता कभी तनिक आगे भी हो जाता है; किन्तु जब आगे होता है, घूमकर मुख दादाकी ओर कर लेता है और पीछेकी ओर चलता भी रहता है ।

अब सब बालक और बछड़े भी दादाके समीप ही बने रहना चाहते हैं । सबके स्नेहका केन्द्र पहिले कन्हाई था और अब दादा हो गया है; किन्तु दादाने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया । दाऊदादा ही पहिले भी बालकोंके विवाद निबटाता था । उसे इसमें अभी तक तो कुछ अटपटा लगा नहीं । कन्हाई उससे इतना सटा, संग लगा रहता है कि दाऊदादा वनमें और घरमें भी किसी दूसरी बातपर ध्यान ही नहीं दे पाता । यह कन्हाई है ही ऐसा कि यह सम्मुख

हो, समीप हो तो किसीका भी ध्यान दूसरी किसी बातकी ओर नहीं जाया करता ।

दादाने ही ध्यान नहीं दिया तो दूसरा कोई कैसे देगा कि कन्हाई आजकल दो क्षणको भी दादाको अकेले नहीं रहने देता ।

एक सबसे अटपटी बात है । वह है जन्म-नक्षत्र । यह जन्म-नक्षत्र प्रत्येक महीनेमें ही आया रहता है और किसी एक दोका भी नहीं, सबका ही आता है । बुरा चाहें जितना लगे; किन्तु जिसका जन्म-नक्षत्र आता है, उस बालकको उस दिन बड़े गोप वनमें नहीं जाने देते । पूजा-पाठ, विप्र-सत्कार तो उत्तम काम हैं; किन्तु ऐसे भी क्या उत्तम कि कन्हाईका साथ ही दिन भर छूटा रहे ।

पहिले जिसका जन्म-नक्षत्र आता था, यह पहिली सन्ध्यासे ही खिन्न हो जाता था । उसे मन मारे ही सब काम करने पड़ते थे । लेकिन अब बालकोंको जन्म-नक्षत्रके दिन प्रफुल्ल रहना आ गया है । उनके मैया-बाबा ही नहीं, दूसरे गोप-गोपियाँ भी उसीके समीप दिन भर बने रहते हैं । उसे सबका भरपूर दुलार-सत्कार उस दिन मिलता है । अतः वह भी प्रसन्न रहता है । उसे भी जन्म-नक्षत्र अब अखरता नहीं है ।

कन्हाई सदासे सबसें धिधिन्न है । अब इसे जन्म-नक्षत्र अखरने लगा है । इसने अपने इस वर्षके पहिले ही जन्म-नक्षत्रपर हठ करली—‘दादाका भी जन्म-नक्षत्र आज ही बुलाओ ।’

जन्म-नक्षत्र कोई कपि या पक्षी है अथवा गोप या गोपी कि उसे कोई बुला देगा । लेकिन कन्हाई हठपर आता है तो किसीकी सुनता कहाँ है । वह हठपर उतर आया था—‘दादाका जन्म-नक्षत्र नहीं आता तो मेरे जन्म-नक्षत्रको भगा दो । मैं आज उसकी पूजा नहीं करूँगा । मैं दादाके साथ जाऊँगा ।’

जन्म-नक्षत्र बुलाया नहीं जा सकता तो भगाया जा सकेगा ? ऐसा कुछ भले न हो सके; किन्तु यह सरलतासे ही हो सकता था कि श्रीब्रजराजकुमार अपने अग्रजके साथ ही रहे । अतः जन्म-नक्षत्र उसका आवे या दाऊ दादाका, दोनों भाई उस दिन बछड़े चराने नहीं जाते थे । इसमें महर्षि शाण्डिल्यको, बाबाको, गोप-गोपियोंको कोई आपत्ति नहीं थी । उन्हें तो अत्यधिक प्रसन्नता

थी कि अब महीनेमें दो दिन राम-श्याम दोनों दिन भर उनके मध्य ही बने रहेंगे ।

बछड़े-बछड़ियाँ वनमें चरने जावें ही, यह आवश्यक नहीं था । राम या श्यामके जन्म-नक्षत्रके दिन सब बालक ब्रजमें ही रहते तो सभी गोप-गोपियोंको प्रसन्नता होती । लेकिन ऐसा हुआ नहीं । अब सायंकाल कोई बालक नन्द-भवन नहीं आता था और प्रातः भी सब अपने बछड़ोंके साथ मार्गमें ही मिलते थे । अतः कन्हैयाके उस प्रथम जन्म-नक्षत्रके दिन भी सबने अपने-अपने बछड़े खोल दिये ।

जिस बालकका जन्म-नक्षत्र पड़े, उसके बछड़े उसका कोई भाई न हो तो पड़ोसमें रहनेवाला बालक साथ ले ले, यह परम्परा तो बालकोंने डाल ही ली थी । उस दिन वस्तुथपने आकर नन्दगोष्ठके बछड़े भी डौक दिये और अपने बछड़ोंके साथ ले गया । सायंकाल तो बछड़े स्वतः अपने-अपने गोष्ठोंमें दौड़े आया करते हैं । उसी दिनसे जब भी दाऊ या कन्हैयाका जन्म-नक्षत्र पड़ा, नन्दगोष्ठके बछड़े भी वस्तुथ ही ले जाता रहा ।

कन्हैया या दाऊ साथ न हों तो बालक वनमें नहीं जाना चाहते थे । बछड़े-बछड़ियाँ बार-बार भाग आते थे । कन्हैयाके जन्म-नक्षत्रके दिन दाऊ उन्हें कठिनाईसे ले जा पाते थे । उस दिन बड़े गोपोंको वन सीमातक बछड़े पहुँचाने पड़ते थे; किन्तु इस वर्ष किसी जन्म-नक्षत्रके दिन ऐसी कोई कठिनाई नहीं हुई । सब बालक और बछड़े-बछड़ियाँ सहज भावसे, प्रतिदिनके समान बिना दाऊ या कन्हैयाके वनमें गये । कोई एक भी बछड़ा पहिले भागकर नहीं लौटा ।

राम-श्याम वनमें नहीं गये । वे घरमें बने रहे । दिन भर उनका सान्निध्य प्राप्त रहा । वे हँसते-खेलते रहे । यह ऐसा आनन्द-दिवस था कि इसके आनन्दमें मग्न गोप-गोपियोंमें-से किसीका ध्यान इस बातपर नहीं गया कि दूसरे बालक और बछड़े दोनों भाइयोंके बिना इतने सहज भावसे वनमें चले कैसे गये ।

ब्रजमें यही वर्ष ऐसा रहा, जब राम-श्यामके बिना बालक-बछड़े वनमें जा सकते थे, रहते थे; किन्तु कन्हैया अपने दादासे पृथक जन्म-नक्षत्रके दिन भी वनमें नहीं जाता था ।



दाऊ चौंके

अत्यन्त महत्वपूर्ण बातें होती हैं, होती रहती हैं और उनकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता: किन्तु कभी कोई छोटी-सी घटना हमें चौंका देती है। तब जैसे कोई परदा उठ जाता है। अनेक पिछली घटनाएँ सहसा स्मरण आती हैं। हम आश्चर्य करते हैं कि उनपर हमारा ध्यान क्यों नहीं गया। वे सब किसी एक ही तथ्यकी ओर संकेत करती लगती हैं।

निखिलाधार, समस्त आकर्षण शक्तिके अधिदेव भगवान अनन्त अत्यन्त शान्त परम सुस्थिर न हों तो सृष्टि सुरक्षित रहेगी? उनका रोषक्षोभ ही तो महाप्रलयका कारण बनता है। वे अनन्त—अपना दाऊ दादा उनका भी अधिष्ठान। अतः दाऊमें चञ्चलताका नाम नहीं। जैसे सम्पूर्ण चञ्चलता उसने अपने अनुजको दे दी है। वह जहाँ बैठा, बैठा रहेगा और उसका चित्त तो अपने इस चपल छोटे भाईमें ही लगा रहता है। जबतक कन्हाई मैयाकी गोदमें नहीं आया था, दाऊको हँसना-रोना, हिलना-चलना सब जैसे भूल गया था। माँ रोहिणी तो मान बैठी थीं कि उनका पुत्र गूँगा-बहरा, अपंग और चेष्टा करनेमें असमर्थ है। दाऊमें क्रियाशीलता और अनन्त बल आया कन्हाईके आनेके साथ।⁹

कन्हाई इस वर्ष अपने अग्रजसे जैसे चिपटा ही रहा। इसने जन्म-नक्षत्रके दिन भी दाऊको अकेले नहीं रहने दिया और यह समीप रहे तो दाऊका ध्यान दूसरी किसी बातपर जाता ही नहीं; किन्तु वर्ष पूरा होनेमें तीन-चार दिन शेष थे, तभी एक छोटी-सी घटना हो गयी। घटनाएँ तो बड़ी-बड़ी होती रहती हैं—होती रहीं; किन्तु उस छोटी घटनाने दाऊको चौंका दिया।

उस दिन बड़े गोप गायोंको चरानेके लिए गिरिराज गोवर्धनके ऊपर ले गये थे। गोवर्धन तब भी बहुत ऊँचे नहीं थे। उनका ऊपरी भाग बहुत कुछ समतल था और उनपर पर्याप्त हरित तृण था। फल वृक्ष थे। पुष्पित लताएँ थीं। कन्दराएँ थीं। जलस्त्रोत थे और सुस्वादु कन्द भी थे। जब श्यामसुन्दर गायें चराने लगे, वे भी सखाओंके साथ गायें लेकर गिरिराजपर

9. 'नन्द-नन्दन' में यह वर्णन-विस्तार है।

जाते थे । श्रीमद्भागवतमें गोवर्धनको इसीलिए 'हरिदासवर्य' कहा गया है ।
(१०.२१.१८)

संयोगकी बात कि उस दिन गोपबालक बछड़े लेकर गोवर्धनकी तलहठीमें ऐसे स्थानपर पहुँच गये, जहाँ शिखरपर चरती गायोंकी उनपर दृष्टि पड़ गयी । गायोंने बछड़े देखे और हुंकार करती पूँछ उठाये नीचेकी ओर दौड़ पड़ीं । गोपोंने लाठियाँ उठायीं और उन्हें रोकने दौड़े; किन्तु गायें तो मार्ग-अमार्ग देखे बिना गोपोंसे बचती-बचाती सीधे दौड़ चलीं । उन्हें न रुकना था, न रोकी जा सकीं ।

हुंकार करती सहस्र-सहस्र गायें ऊपरसे दौड़ी आयीं तो बछड़े और गोप बालक भी चौंककर उनकी ओर देखने लगे । दाऊ दादाने पहिले समझा कि गायें कन्हाईको देखकर दौड़ी आयी हैं; किन्तु किसी गायने न कन्हाईकी ओर देखा और न उसे सूँघने आयी । सब अपने-अपने बछड़ोंके पास आयीं । बछड़े उनका दूध पीने लगे और वे हुलसती, हुंकार करती उन्हें ऐसी आतुरतापूर्वक चाटने लगीं, मानो उन्हें अपने बछड़े युगोंके पश्चात् मिले हैं ।

'अरे, यह कामदा, यह कृष्णा, यह लोहिता.....' दाऊ अपनी और सखाओंकी भी बहुत-सी गायोंको पहिचानते थे—'इनके तो दूसरे बछड़े-बछड़ियाँ भी महीने-डेढ़ महीनेके हो चुके । अपने नवजात बछड़ोंको छोड़कर उनसे बड़े बछड़ोंके प्रति इनका यह वात्सल्य उमड़ना ?'

अभी यह विचार उठा ही था कि तबतक लाठी उठाये, हाँफते-दौड़ते गायोंको घरानेवाले गोप आ पहुँचे । गायोंको रोकनेके प्रयत्नमें उन्हें बहुत दौड़ना पड़ा था । गायोंको वे रोक नहीं सके थे और गायोंके समान अमार्गसे कूदते तो आ नहीं सके थे । उनकी विफलता, व्यस्तता देखकर बालकोंने ताली बजा दी थी । इससे वे क्रोधमें भरे, स्वेदसे लथपथ, हाँफते आये थे । उन्हें गायोंपर और नन्हें बालकोंपर भी क्रोध था । बालक उन्हें दूरसे देखकर सहम गये थे । ऐसेमें वे गायोंको सब मर्यादा भूलकर न भी मारते तो ललकारते, लाठी पटकते बालकोंको इधर आनेके लिए डाँटते, यही सम्भावना थी ।

दाऊ सावधान हो गये थे । उनके सामने उनके अनुजको कोई डाँटे, यह उन्हें सहन नहीं है । गायोंका व्यवहार उन्हें भूल गया । वे कन्हाईको पीछे

करके कुछ पद उधर बढ़ आये जिधरसे गोप दौड़ते उतर रहे थे ।

गोपोंने बालकोंको देखा और उनका तमतमाया मुख सहसा प्रसन्न हो गया । सबने लाठियाँ हाथसे भूमिमें गिरा दीं और अपने-अपने बालकोंको उठाकर भुजाओंमें लपेटकर हृदयसे लगा लिया । सबके शरीर रोमांचित हो गये । सबके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु टपकने लगे । सब बार-बार अपने पुत्रोंका सिर सूँघने लगे । उनकी अलकें और पीठ सहलाने लगे । सब ऐसे विह्वल जैसे वर्षोंपर उनके पुत्र उन्हें मिले हैं ।

बड़ी देरमें गायोंको हाँकनेका स्मरण हुआ उन्हें । बार-बार पुत्रोंसे पृथक् होते और फिर उन्हें हृदयसे लगा लेते । बड़ी कठिनाईसे वे गायोंको किसी प्रकार हाँककर वहाँसे ले जा सके । गायोंके समान गोप भी बार-बार मुड़कर देखते गये बालकोंको । अनेक बार लौट-लौट आये; किन्तु राम-श्यामके समीप न कोई गाय आयी और न कोई गोप आया । दोनों भाई उपेक्षित, तटस्थ देखते रहे यह दृश्य । किसी एकने भी उनकी ओर नहीं देखा । जैसे वे वहाँ हों ही नहीं ।

‘श्रीकृष्ण ही आकर्षणकी सत्ता, श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंकी अन्तरात्मा, श्रीकृष्ण सबके परमप्रेष्ठ, दाऊदादा अत्यन्त गम्भीर हो गये । वे चौंके तो चिन्तामग्न हो गये—‘इन श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें गोपोंका अपने पुत्रोंमें यह मोह ? गायोंका अपने नन्हें बछड़ोंके स्थानपर इन बड़े बछड़ोंके प्रति इतना आकर्षण ? ब्रजमें श्रीकृष्णके स्वजन, कृपाभाजनोंमें यह श्रीकृष्णसे विमुखता और मोहका ऐसा प्राबल्य ? यह क्या है ? किसकी माया है यह ?

‘श्रीकृष्ण नित्य निर्विकार, समदर्शी । इनका न कोई अपना, न पराया । ये केवल प्रेमपरवश—ब्रजके प्रेमैक प्राणजनोंको श्रीकृष्णसे पराङ्मुख करनेके लिए असुरोंमें किसीने यहाँके लोगोंको माया-मोहित किया है ? किन्तु श्रीकृष्णके जनोंको स्पर्श कर सके, ऐसी आसुरी माया कौन-सी ?’

‘ब्रजवासी केवल कन्हाईसे प्रेम करते थे । देवताओंमेंसे किसीमें इन सबकी किसीमें प्रीति नहीं । ये लोग पूजा भले परम्परा तथा शास्त्रका सम्मान करके अवसरके अनुसार देवताओंकी कर देते हों, किसी देवतामें इनकी निष्ठा नहीं । देवता ईर्ष्यालु तो होते हैं । उनमेंसे किसीने या सबने मिलकर ब्रजके

लोगोंको अपनी मायासे भ्रान्त किया है ? यह देवमाया है ?'

'मुझे भ्रान्त कर सके, मैं पहिचान न सकूँ, ऐसी मायाशक्ति सुर-असुरोंमें तो नहीं है । यह कन्हाई मेरे समीप है । इसको छोड़कर और किसीकी माया मेरा स्पर्श नहीं कर सकती । इतना साहस सुर-असुर मिलकर भी नहीं कर सकते कि मुझे माया-भ्रान्त करनेका विचार कर सकें ।' दाऊ दादाने निर्णय कर लिया—'वह मेरे इस छोटे भाईकी ही कोई लीला होनी चाहिये ।'

'दादा ! तू क्या सोचने लगा ?' कन्हाईने अग्रजकी भुजा पकड़ी । दूसरा कोई तो इसकी ओर ध्यान दे नहीं रहा और इसका यह दादा भी अब ऋषि-मुनियोंके समान गम्भीर बनने लगा है । यह भी कन्हाईको नहीं देख रहा तो कन्हाई खीझेगा नहीं ?

'कनू ! यह सब क्या है ?' दाऊ दादाने अनुजकी ओर गम्भीर दृष्टिसे देखकर पूछा ।

'तू पहिले यहाँ बैठ ।' श्यामने अग्रजका हाथ पकड़ा और उन्हें एक शिला तलपर बैठाकर उनसे सटकर वाम स्कन्धसे लगा बैठ गया—'तू किसे पूछ रहा है ? बछड़ोंको या कपियोंको ?'

'अब कोई गोप तुम्हारी ओर ध्यान नहीं देते । कोई गोपी भी नहीं देती और गाय भी नहीं :' दाऊने अनुजकी ओर देखा ।

'सब मुझे हैरान कर लेते थे । उन्हें जाने दे । तू तो मेरी ओर देख ।' कन्हाई रुठने जैसे स्वरमें बोला—'तू भी तो खड़े-खड़े सोने लगा था ।'

'कनू !' दाऊ दादाने बड़े स्नेहसे पूछा—'यह क्या लीला कर रहे हो, मुझे भी नहीं बतलाओगे ? देखो, अब कोई सखा प्रातः सायं अपने भवन नहीं आते । दूसरे ही नहीं, अपना भद्र भी अब अपने घर रहने लगा है । उसने तो जन्मसे अपनी मैया-बाबा नहीं जाना था । वह तो तुम्हें कभी खिझाता नहीं । तुमने उसे और अपने सखाओंको, अपने आश्रित गोप-गोपियोंको क्यों त्याग दिया ? इन्हें अपनेसे विमुख क्यों बनाया ? अपनी ओर आकर्षित करनेके स्थानपर अल्पप्राण, अल्पज्ञ जीवोंको माया-मोहके दलदलमें डाल देनेका स्वभाव तुम्हारा कबसे हो गया ? तुम्ही ऐसे बन जाओगे तो जीवोंके लिए आश्रयदाता कहाँसे आवेगा ? तुमने ऐसा क्यों किया कि ब्रजके भोले लोग तुम्हें छोड़कर

संसारके सम्बन्धोंकी ओर आकर्षित होने लगें ? तुम इतने अकरुण क्यों बन गये हो ?'

विशाल अरुणाभ लोचनोंसे टपाटप बिन्दु झरने लगे । करुणा-वरुणालय जीवोंके परमाचार्य छोटे भाईकी ओर एकटक देखते करुणार्द्र उपालम्भ दे रहे थे ।

'दादा !, कन्हाईने अपने पटुकेसे अग्रजके नेत्र पोंछे और उनके कण्ठमें दोनों भुजाएँ डालकर बोला—'मैं ऐसा बनना भी चाहूँ तो तेरा भय, तेरा संकोच मुझे ऐसा बनने देगा ? ब्रजके सब जन तो मेरे प्राण हैं । ये सब बछड़े, सब सखा मैं ही हूँ । सब मुझसे ही प्रीति कर रहे हैं । सब मेरी ही ओर आकर्षित हैं ।'

'सब तुम्हीं हो ।' अब दाऊ दादाके लिए योगमाया भी कोई आवरण बनाये रखनेमें असमर्थ हो गयी थी । दादाने कहा—'श्रुति तुम्हें ही सर्वरूप, विश्वरूप कहती है, यह ऐसे ही नहीं कहती ।'

'किन्तु कनू !' दाऊ दादा क्षण भरमें ही फिर गम्भीर हो गये—'अपने सखाओंका, अपने बछड़ोंका क्या हुआ ? वे कहाँ हैं ? उनको तुम्हारे समीपसे पृथक करनेका साहस किसने किया ? तुम सखाओंसे पृथक रह कैसे सके ? तुम्हें उनका स्मरण नहीं आता ? उनके बिना तुम सुखी-प्रसन्न हो ? तुम्हारे उन जनोंका क्या हुआ ? तुम कुछ क्षण यहाँ बैठो, मैं उनको ढूँढ़ता हूँ । मैं देखता हूँ कि उनको ब्रजसे पृथक करनेकी धृष्टता करनेवाला कौन है ।'

दादाके नेत्र अंगार उगलने लगे । मुख क्रोधसे तमतमा उठा । वह कन्हाईके समीपसे उठने ही वाला था; किन्तु श्यामने उसके कण्ठमें भुजाएँ डाल रखी थीं और अब अपना मस्तक भी उसके वामस्कन्धपर रख दिया था ।

'दादा !' अत्यन्त प्रेमसे कन्हाई बोला—'जिनके लिए तू सचिन्त है, जिनके लिए तेरे अन्तरमें स्नेह है, उनकी बात तो छोड़, जो तेरा भूलकर भी कभी स्मरण कर लेंगे, उनका अनिष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला अपना विनाश आमन्त्रित करेगा । तेरे स्वजनों, आश्रितोंका अमंगल न कभी हुआ और न कभी हो सकता ।'

'तब यह सब क्या है ?' दादाको कन्हाईका यह आश्वासन भी आश्चर्य

नहीं कर सका—‘अपने सखा कहाँ हैं ? कैसे हैं ?’

‘सब सकुशल हैं । आनन्दसे खुराटे लेकर सो रहे हैं ।’ कन्हाईने तनिक मुस्कराकर कहा ।

‘सब जीव माया मोहित सो ही तो रहे हैं ।’ दाऊ दादाका स्वर अब भी सौम्य नहीं हुआ था । ‘तुम जीवोंको इस मोहनिद्रासे जगाने धरापर पधारे हो या उन्हें सुलाने ?’

‘तू तो मुझे ही डौटने लगा है ।’ कन्हाईने मुख बनाया ।

‘तुमने नहीं किया यह, तो किया किसने ?’ अपनेजनोंके किसी अमंगलकी आशंका नहीं; किन्तु वे कन्हाईसे दूर हैं—‘यह भी दादाको क्षुब्ध किये दे रहा था—‘वे कहाँ सो रहे हैं ? कबसे सो रहे हैं ?’

‘सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको हम गोपबालकोंसे परिहास सूझ गया । वे अघासुरके मरनेके दिन आये गगनमें । तेरा तो बह जन्म-नक्षत्रका दिन था ।’ कन्हाईने संकुचित स्वरमें ही विवरण दिया—‘ब्रह्माजी ही अपने सखाओं और बछड़ोंको उठा ले गये । उनकी सृष्टि बहुत बड़ी है । बही कहीं सबको सुला गये हैं ।’

‘तब तुम स्वयं सब बछड़े और गोपकुमार बन गये ।’ दादाके स्वरमें झल्लाहट थी । ‘सृष्टिकर्ताको सृष्टिकर्मका मूलमर्म तो तुमने भली प्रकार समझा दिया ।’

‘मैं न बनता तो अपनी गायोंको, गोप-गोपियोंको कितनी व्यथा होती ?’ कन्हाई ऐसे सफाई दे रहा था जैसे कोई छोटा बालक अपने असन्तुष्ट शिक्षकके सामने खड़ा हो । ‘सन्तानके वियोगमें वे कितने व्याकुल होते ।’

‘यह तो तुमने उचित किया, किन्तु यहीं तुम्हारे कर्तव्यकी इति श्री हो गयी ?’ दाऊ दादा सचमुच कुछ रुष्ट ही बोल रहे थे—‘कितने दिन हो गये अपने सखाओंको सोते ?’

‘ब्रह्माजीकी तो एक त्रुटि मात्र हुई; किन्तु कन्हाईने हिचकते-डरते स्वरमें ही कहा; क्योंकि वह भी जानता है कि उसके इस दादाका कोई ठिकाना नहीं है । शान्त रहे तो कल्पके कल्प बीतते जायँ, पलक तक नहीं हिलावेगा और

रुष्ट हो तो महाप्रलय करते इसे क्षण भी नहीं लगा करता । अतः बहुत धीरे स्वरमें बोला—‘हम मनुष्योंका लगभग एक वर्ष बीतने ही वाला है ।’

‘तुम्हारे पास ब्रह्माओंका अभाव हो गया है ?’ दाऊ दादा ब्रह्मापर रुष्ट हो गया था—कोई जीव ब्रह्मा पदका अधिकारी कहीं शेष नहीं भी है तो तुम इतने बालक, इतने बछड़े बन गये, एक चतुर्मुख रूप और तुम्हें बनाना नहीं आता था ? तुमने भक्तापराधीको क्षमा करना कबसे प्रारम्भ किया है ?’

‘दादा, ब्रह्मा तनिक भ्रान्त ही हुए और वह भी कोई दुर्भावना नहीं, केवल मेरी कोई और मंजु-महिमा देखनेकी उत्कण्ठाने उन्हें कुछ असावधान कर दिया । कन्हाईने अग्रजसे अनुनय की—‘उनपर तुझे रुष्ट नहीं होना चाहिये ।

दाऊ रुष्ट हो तो उसे ब्रह्माको भी दण्डित करनेमें देर नहीं लगेगी । उस अनन्त ऐश्वर्यको केवल संकल्प करना पड़ेगा; किन्तु दाऊकी भी कठिनाई है कि अपने अनुजकी इच्छा वह टाल नहीं पाता । इस कन्हाईका खिन्न वदन देखना उससे सहन नहीं हो सकता । यह ब्रह्मापर सानुकूल है तो अब उसपर रोष नहीं किया जा सकता ।’

‘कनू ! यह लीला बहुत हो चुकी ।’ दाऊने अब कुछ कोमल स्वरमें कहा—‘माया ब्रह्माकी हो या ब्रह्माकी—तुम्हारी, माया ही है । अपने सखा किसीकी मायासे मोहित होकर कहीं सोते रहें, यह कोई अच्छी बात नहीं है । तुम इसी ब्रह्माको अभी ब्रह्मलोकमें रखना चाहते हो तो बनाये रखो; किन्तु मुझे सखाओंको अब जगा देना है ।’

‘तू तो सदा जीवोंको मायासे जगाता ही है ।’ श्रीकृष्णने बड़े भाईकी ओर अब सस्मित देखा ।

‘इस बार तुम जगाना चाहते हो तो मैं नहीं रोकूंगा ।’ दाऊने कन्हाईकी कटिमें लगी कछनीमेंसे शृंग खींच लिया—‘लो, इसे अधरोंसे लगाओ ।’

दाऊ दादाको तो स्मरण नहीं हो सकता कि जिस दिन यह वत्सहरण हुआ था, उस दिन प्रातःकाल कन्हाई सबसे पहिले उठा था और इसी शृंगको बजाकर इसने उस दिन सब बालकोंको जगाया था । श्याम शृंग बजावे तो बालक-बछड़े कहीं भी सोये हों, निश्चय जाग जायेंगे । शृंग ध्वनि हो, कृष्णके अधरोंसे लगा शृंग बजे और कन्हाईके स्वजनोंको किसीकी माया प्रसुप्त रख

सके, यह तो अशक्य है ।

‘सब अपने ब्रजमें नहीं हैं ।’ कन्हैयाने अग्रजके करसे शृंग ले लिया; किन्तु अधरोंसे नहीं लगाया—‘इस मर्त्यधरापर ही हों, यह भी आवश्यक नहीं है ।’

‘उन्हें वे जहाँ हैं, तुम नहीं जानते और न जान सकते ?’ दाऊने हँसकर व्यंग किया—‘वे जागकर इधर-उधर दौड़ेंगे, भटकेंगे, यहाँ पहुँचनेका उन्हें मार्ग नहीं मिलेगा ? तुम्हारी योगमायाने इन दिनों ब्रह्माकी मायासे हार मानली है अथवा वे भी कहीं शयन करने चली गयी हैं ?’

‘दादा : तू तो चिढ़ाता है ।’ कन्हैयाने अग्रजके कण्ठसे भुजाएँ हटायीं और शिलातलसे उठते-उठते बोला—‘तू थोड़े क्षण यहीं बैठा रह । जिसने सुलाया है, उसीको जगाकर पहुँचाना चाहिये और वह तेरे सम्मुख आते डरेगा । उसमें इस समय तेरी झिड़की भी सहनेकी शक्ति नहीं है ।’

कन्हैया स्वयं भी डर रहा था । उसे भी भरोसा नहीं था कि उसका यह दादा ब्रह्माको सामने देखकर शान्त ही बना रहेगा । यह उन्हें डाँटने लग सकता है अथवा इसका रोष भड़क जा सकता है ।

‘अच्छा, कुछ क्षण मैं प्रतीक्षा कर लेता हूँ ।’ दाऊने बहुत शिथिल स्वरमें कहा—‘लेकिन केवल कुछ क्षण और ये क्षण उस ब्रह्माके क्षण नहीं होंगे ।’

‘ब्रह्माके क्षण क्यों होंगे ।’ कन्हैया शिलासे उठ खड़ा हुआ था । हँसते हुए उसने अग्रजको आश्वस्त किया—‘ब्रह्माकी तो अभी केवल एक त्रुटि हुई है । उसका क्षण तो सत्ताइस त्रुटियोंका होता है । हमारे सत्ताइस वर्षका । मैं तो अपने यहीं ब्रजके क्षणोंकी बात करता हूँ । तू कुछ क्षण प्रतीक्षा कर ले ।’

कन्हैया वहाँसे एक ओर जाने लगा । दाऊ दादा अपने इस लीलामय अनुजको जाते हुए देख रहा था । तनिक दूर जाकर कन्हैयाने मुड़कर फिर दाऊकी ओर देखा और कर-के संकेतसे सूचित किया कि वह सखाओं तथा बछड़ोंको लेकर शीघ्र लौट रहा है ।

दाऊ उसी दिशाकी ओर देखते रहे । उन्होंने नहीं देखा कि यहाँके सब बालक और बछड़े भी कन्हैयाके साथ ही दौड़ गये हैं ।



उपसंहार

‘अपनी ही मायामें उलझकर ब्रह्माजी रह गये । सृष्टिकर्ताका उनका अभिमान—उन्होंने कभी सोचा नहीं था कि वे निर्माता नहीं हैं । पञ्च-महाभूत, सूक्ष्म इन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ, जीव और जीवोंके कर्मसंस्कार, उन संस्कारोंसे समन्वित अन्तःकरण, इनमें-से कुछ ब्रह्माजी नहीं बनाते । ये सब पहिलेसे विद्यमान रहते हैं ।

ब्रह्माजी कुम्भकारोंके आदि पुरुष—महत्तम कुम्भकार होनेका गौरव पा सकते हैं । मिट्टी, चाक, डण्डा, सूत कुछ भी कुम्भकार नहीं बनाता । वह तो केवल इन सबके सहयोगसे आकृतियाँ गढ़ता है । ब्रह्मा भी आकृतियाँ ही गढ़ते हैं । बनाते क्या हैं वे ?

सृष्टि सदा सर्वात्माका संकल्प । स्रष्टा, पालक और संहर्ता जो है, उससे उलझनेमें चतुर्मुखको ‘चारो खाने चित्त तो गिरना ही था । न जीव, न प्रारब्ध, न पञ्चभूत-केवल संकल्प और कन्हाईने जड़ (छड़ी, छीके, वस्त्र-आभरण, चेतन (बालक-बछड़े) स्थूल (शरीर) सूक्ष्म (शील-स्वभाव) सब बनकर दिखला दिया कि वही वस्तुतः विश्वरूप है ।

ब्रह्मा सबको गुफामें माया निद्रा देकर घूमे तो ब्रजधाम देखने आ गये । उनकी एक चुटि ही तो बीती थी । नीचे देखकर चौंके—‘अरे, यहाँ तो सब बछड़े और गोप कुमार वैसे ही नन्दनन्दनके आसपास खेल रहे हैं । ये सब मेरी मायासे जागे कैसे ? कब जाग गये ? यहाँ किस ओरसे निकल आये ?’

अपना हंस उड़ाया वेगसे । उस गुफा तक गये और चारों मुखोंके आठोंनेत्र फाड़-फाड़कर देखते रह गये । वहाँ सब बछड़े और ग्वाल-बाल ज्योंके त्यों सो रहे थे । कोई बछड़ा भी कान या पूँछ हिलाता नहीं मिला ।

ब्रह्माजी ब्रजकी ओर फिर हंसपर उड़े । वहाँ भी सब ग्वाल-बाल और बछड़े । अब दोनों स्थानोंके मध्यमार्गमें कुछ ऊँचा हंस किया । दो मुख ब्रजकी ओर और दो मुख गुफाकी ओर । इस बार और घनचक्कर बन गये । चारों सिर चकराने लगे—‘इनमें सच्चे कौनसे-ये जो नीचे श्रीकृष्णके पास धमा चौकड़ी कर रहे हैं वे या जो वहाँ गुफामें खर्राटे ले रहे हैं वे ?’

ब्रह्माजीने गिनकर देखे । रूप-रंग मिलाया । इससे काम नहीं चला तो अपनी सर्वज्ञता आजमा देखी; किन्तु दोनों स्थानोंमें केवल एक अन्तर—ब्रजमें कन्हाई है और गुफामें नहीं है । जहाँ है, वहाँ जागरण, उल्लास, क्रीड़ा है । जहाँ नहीं है, वहाँ मोहनिद्रा है ।

‘इनमें कौनसे सच्चे ?’ ब्रह्माजी सोच रहे थे ।

‘आपको सच्चाई देखनी है ?’ कन्हाई उधर दाऊ दादाकी डॉट भी खा रहा था और इधर चतुर्मुखके लिए अपनी चपल अंगुली भी हिला देता था ।

‘सच्चाई यह है ?’ आपको भी सच्चाई जाननी है तो श्रुति कहती है—‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।’

श्रीरामानुजाचार्यने सत्यका अपना अनुभव सुनाया है—‘सकलमिदमहं च वासुदेवः ।’

श्रुतिके साक्षात् विग्रह अपनेको माननेवाले ब्रह्माजीके सामने जब श्यामने सत्य प्रकट किया; उन चतुर्मुखके पैरोंके नीचेसे (पर वे भूमिपर तो थे नहीं कि भूमि सरक जाती) ब्रह्मलोक सरक गया । उन्हें लगा कि ‘अब मेरा ब्रह्मापद समाप्त हो गया ।’

शत-शत गोप बालक, सहस्र-सहस्र बछड़े—सब पलक झपके बिना चतुर्भुज नारायण और वह भी किसी ब्रह्माण्डके पालक नहीं । सबके सब परमपुरुष, सच्चिदानन्द घन श्रीविग्रह, सबकी स्तुति करते तत्त्वोंके भी अधिदेवता और सबके सम्मुख हाथ जोड़े विनीत एक-एक ब्रह्मा भी कुछ अनुनय करते ।

ब्रह्माजीको लगा—‘मैं अवश्य पदच्युत कर दिया गया और ये इतने ब्रह्मा सम्भवतः अभी बेकारीके दिन काटते थे । अब मेरे रिक्त पदको पानेके लिए परमपुरुषसे सब गिड़गिड़ा रहे हैं । इतने अधिक विनम्र प्रत्याशी हैं तो अब मुझ अपराधीकी प्रार्थना सुनी जानेकी भला क्या सम्भावना ।’

घबड़ाकर आठों नेत्र बन्द कर लिए । श्रीकृष्णका यह ऐश्वर्यमय रूप देखनेका भी साहस नहीं रह गया था ।

किसी प्रकार धैर्य धारण करके नेत्र खोलकर डरते-डरते नीचे देखा

तो वहाँ तो पट-परिवर्तन हो गया था । कन्हार्ईने अपना वैभव एक बार और दिखलाया । मानो यह ब्रह्माजीको कहा गया—‘तुम तो काल-परतन्त्र हो । तुम्हारी एक त्रुटि सही; किन्तु वह बीत गयी और उसे तुम लौटा नहीं ला सकते; किन्तु देखो, मैं कालका नियन्ता हूँ । कालको मेरे संकेतके अनुसार चलना पड़ता है ।’

पृथ्वीपर लगभग एक वर्ष बीत रहे हैं, यह पृथ्वीके वातावरणमें आकर ब्रह्माजी अनुभव कर सकते थे । उन्होंने देखा कि यमुना-पुलिनपर वैसे ही गोप-बालकोंके छीके, भोजनपात्र (पत्ते, पत्थर आदि) तथा उनपर भोजन-सामग्री धरी है, जैसे बालकोंको ले जाते समय धरी थी । उसमें एक कण भी न वायुसे हिला है, न पक्षी, पशुने छुआ है और न उस तक कोई चींटी पहुँची है । सब वैसा ही, अछूता और अविकृत ।

वैसे ही श्रीब्रजराज कुमार कक्षमें शृंग और वेत्र दबाये, कटिकी कछनीमें मुरली लगाये, बायें हाथपर दही-भातका ग्रास लिये, जूठे मुख, दधिलिप्त अधर और दक्षिण कर इधर-उधर अपने सखाओं तथा बछड़ोंको ढूँढ़ते घूम रहे हैं और पुकार रहे हैं—‘भद्र ! सुबल ! तोक ! तुम सब कहाँ हो ?’

कन्हार्ईने ऊपर दृष्टि उठायी । मानो कहा गया—‘बहुत सृष्टि करते हो, कालमें प्राणी-पदार्थोंको इस प्रकार अविकृत और स्थिर बना लोगे ?’

ब्रह्माजीने हंस छोड़ा और गगनसे कूदे । सीधे भूमिपर दण्डवत् गिरे नन्हें ब्रजराजकुमारके सम्मुख । कन्हार्ई न चौंका और न इसने कोई कुतूहल प्रकट किया । चार मुख वाले, ज्योतिर्देह, ददियल ब्रह्माजी जो अपने समयमानसे भी पचास वर्ष पूरे कर चुके थे, एक लगभग चार वर्षके गोपकुमारके सामने दण्डवत् कर रहे थे । उठते थे किसी प्रकार अपनेको सम्हालकर और फिर दण्डवत् गिर जाते थे । बार-बार अपने मुकुटकी नोकसे बहुत डरते झिझकते श्रीकृष्णके चरणाग्रका स्पर्श करते और फिर दण्डवत् ।

ब्रह्माजीको भूल ही गया कि देवताओंको पृथ्वीका स्पर्श नहीं करना चाहिये । पृथ्वीका स्पर्श करनेपर फिर देवलोक जानेकी शक्ति लुप्त हो जा सकती है । लेकिन ब्रह्माजीको कहाँ पुनः ब्रह्मलोक जानेकी आशा रही थी । उन्होंने तो अपनी प्रार्थनामें ब्रजमें ही कोई लता या तृण बना देनेकी याचना की थी ।

अच्छा हुआ कि वहाँ उस समय कोई गोप-बालक नहीं था । वे सब होते तो ताली बजाकर हँसकर ब्रह्माजीको ऐसे भगा देते जैसे ताली बजाकर चिड़िया उड़ा देते हैं । कन्हैयाको भी सब चिढ़ाते । बात ही चिढ़ानेकी थी । एक चार मुखका सूर्यके समान चमकता लाल-लाल दड़ियल देवता बार-बार उठता और दण्डवत गिर रहा था और यह चपल नन्दनन्दन न भागता था, न हँसता था । यह तो चुपचाप खड़ा उस देवताका यह व्यायाम देखनेमें लगा था ।

देर तक चला ब्रह्माका यह व्यायाम । उन्होंने सहस्रों दण्डवत की । उनका दिव्यदेह तो थकनेवाला नहीं था और उन्होंने कोई माला लेकर गिनकर दण्डवत की नहीं । कन्हैया गिनना भी चाहता तो इसे इतना गिनना कहाँ आता है । यह अपने हाथोंकी अँगुलियाँ गिन लेता है, इतना ही बहुत है ।

अन्तमें ब्रह्माजीने अपने नेत्र अपने हाथोंसे ही पोंछे । उनके अश्रुओंसे उनके चारों मुखोंकी दाढ़ियाँ भीग गयी थीं । उनका शरीर मस्तकसे पैर तक ब्रजरज मण्डित हो गया था । सब हाथोंकी अञ्जलि बनाकर, सिर झुकाये स्तुति करने लगे ।

ब्रह्माजीने जो स्तुति की, वह जानना हो तो आप उसे श्रीमद्भागवतमें पढ़ें । यहाँ मैं उसे या उसका अर्थ नहीं देने चला हूँ । ब्रह्माजी चाहे दण्डवत करते रहे अविराम गतिसे या स्तुति करते रहे, कन्हैया चुपचाप खड़ा केवल उन्हें देखता रहा । एक शब्द भी बोला नहीं । यह कुतूहल वश ब्रह्माको नहीं देख रहा था तो क्या ऐसे चुपचाप स्थिर खड़े रहना इसके स्वभावमें है ?

आपके ध्यानमें एक बात आ गयी होगी । कन्हैया अपने वर्तमान रूपसे तो दाऊ दादाके पास बैठा था । वहाँसे चला तो उसके करपर कोई दही-भातका ग्रास नहीं था । जैसे गोप बालकोंके वत्स-हरणके दिनका भोजन, छीके, पात्रादि नित्य कर दिया था इसने, वैसे ही उस दिनका अपना यह सखा और बछड़े ढूँढ़नेवाला रूप भी नित्य कर दिया था । वही वामहस्तपर दही-भातका ग्रास और जूठा हाथ, जूठा मुख और यह रूप तो लगभग चार वर्षकी वयका था । ब्रह्माजीकी एक त्रुटि बीती थी तो उनके लिए कन्हैयाने भी ब्रजके कालको केवल एक त्रुटि ही बना दिया था ।

श्यामसुन्दर जानता था कि अब यह लीला अधिक नहीं चल सकती । दाऊ दादा अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता था । बछड़े और बालक जो ब्रजधरापर अभी तक थे, ब्रह्माजीके सामने ही चतुर्भुज हुए थे और फिर अदृश्य हो गये थे । ब्रजरामकुमारने यह भी दिखला दिया था कि वे केवल विश्वरूप होते ही नहीं हैं, विश्वको अपनेमें समेट भी लेते हैं । अब ब्रह्माजीको केवल नेत्रोंसे संकेत किया—‘मेरे सखा और बछड़े ले आओ ।’

ब्रह्माजी उस अचिन्त्य ऐश्वर्यको देखकर अब तक दण्डवत-स्तुति करनेमें लगे थे । अब उन्हें श्रीकृष्णका भ्रूभंग देखकर स्मरण आया—‘अपनी भूल झटपट सुधारी जानी चाहिये ।’

उन्होंने सिर झुकाया तो भौंहोंका ही संकेत मिला—‘शीघ्रता करो और यह करके अपने लोक चले जाओ । डरो मत; लेकिन ऐसी धृष्टता फिर मत करना ।’

देवताओंको ही शब्दमयी भाषाकी आवश्यकता नहीं होती । वे संकल्पग्राही होते हैं । संकल्पकी भाषा उनके लिए पर्याप्त है । ब्रह्माजी तो देवताओंके भी पूर्वज हैं । उन्हें बोलकर आदेश देनेकी आवश्यकता नहीं थी ।

ब्रह्माजी वहाँसे गगनमें उठे तो कन्हाईका यह रूप भी वैसे ही अदृश्य हो गया, जैसे बछड़ों और गोप-बालकोंका रूप हुआ था, यह कहना भी ठीक नहीं है । वस्तुतः दादाके समीपसे कन्हाई वनमें आया था । इस समय यह लगभग पाँच वर्षका था, ब्रह्माजीके ऊपर उठते ही वहाँ आया तो उसका वह चार वर्ष वाला रूप इस रूपसे एक हो गया । वह चार वर्ष वाला रूप तो केवल ब्रह्माके लिए स्थिर किया गया था ।

‘दादा !’ कन्हाईने दूरसे ही पुकारा पीछे लौटकर । सदा यह ऐसे ही पुकारता अग्रजके समीप आता है । आकर बड़े भाईके करको पकड़कर हिलाया—‘तू तो यहाँ बैठा है । सब सखा वहाँ पुलिनपर कलेऊ करने बैठे हैं और तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं । तुझे भूख नहीं लगी ? उठ ! चल ! मुझे बहुत भूख लगी है ।’

‘चलो !’ दाऊ उठ खड़े हुए । वे अपने इस लीलामय अनुजको जानते हैं । अब इससे कुछ नहीं पूछा जा सकता । इससे अब पूछो—‘बछड़े और

बालक कब आये ? ब्रह्मा उन्हें पहुँचा गये ?

‘कौन ब्रह्मा ?’ यह भोला मुख बनाकर कह देगा—‘किस गाँवका गोप है ? तूने उसे देखा है ? कब आया वह यहाँ ? मैं तो उसे जानता नहीं ।’

‘सृष्टि कर्ता ब्रह्मा’ सबसे बड़ा देवता । अपने सखा और बछड़े जो चुरा ले गया था ।’ आप क्या समझते हैं कि यह सब स्मरण दिलानेसे कन्हाईको कुछ स्मरण आवेगा ?’

‘तुझे देवताकी पूजा करनी हो तो फिर कर लेना ।’ यह उलटे झल्लायेगा—‘मुझे भूख लगी है । उठ चल, अभी कोई देवता मत बुला । तेरा है ? बहुत बुरा देवता है तब । भूत करना उसकी पूजा । सब सखा तो पुलिनपर भोजन करने बैठे हैं । चल, बछड़े पास ही हैं । उन्हें हम दोनों हाँकें चलते हैं ।’

दाऊ दादाको ऐसे प्रश्न करने नहीं आते । उनका यह अनुज भूखा है, सुकुमार है । अब इससे कुछ पूछनेके स्थानपर इसे कुछ भोजन मिलना चाहिए और अकेले यह भोजन करने जायेगा नहीं । अतः दाऊ उठ खड़े हुए ।

‘तुम सखाओंके पास चलकर कलेऊ प्रारम्भ करो ।’ दाऊने अपना लकुट उठाया—‘बछड़ोंको लेकर मैं आता हूँ ।’

‘तू वनमें भूल जायेगा ।’ कन्हाई बहुत चतुर बन कर बोला—चल, मैं तुझे सखाओंके पास ले चलता हूँ । बछड़े तो समीप ही हैं । उन्हें मैं पुकार लूँगा ।’

बात ठीक है । आज सखा कहाँ पुलिनपर कलेऊ करने बैठे हैं, यह दाऊने देखा नहीं है । इसका कुछ अनुमान भी नहीं; क्योंकि जिस दिन वत्स-हरण हुआ था, उस दिन तो दाऊ दादा जन्म-नक्षत्रके झमेलेमें ही नहीं आ सका था ।

दाऊ और कन्हाई वहाँसे सीधे पुलिनकी ओर चले । बछड़े मार्गमें ही थे । दोनों भाइयोंको दूरसे देखते ही सबोंने पूँछ उठायी और इनकी ओर दौड़े । सबोंने इन्हें सूँघा, बार-बार सूँघा और दौड़ते-कूदते इनके साथ लग गये । बछड़ोंको हाँकना कहाँ पड़ता है, ये सब तो सदा कन्हाईके साथ ही लगे रहना

चाहते हैं ।

ब्रह्माजी की चर्चा अब नहींकी जानी चाहिये । जैसे मायासे वे पहिले बछड़े उठा ले गये थे, वैसे ही बछड़ोंको मार्गमें छोड़कर सचेत कर गये थे और बालकोंमें पुलिनपर जो हरणके समय जहाँ, जैसे बैठा था, वहाँ उसे वैसे ही बैठाकर सचेत करके चले गये थे । बालक अपने-अपने भोजन पात्रोंके समीप बैठे सब वनकी ही ओर देख रहे थे । उनको लगता था कि अभी-अभी कन्हार्ई उनके मध्यसे उठकर बछड़े हाँकलाने वनमें गया है ।

राम-श्याम दोनों भाई बछड़ोंके साथ दूरसे आते दीखे तो बालक प्रसन्न हो गये । अनेक उठकर खड़े हो गये—‘दाऊदादा भी आ गया !’

‘कनू ! झटपट आजा । बहुत शीघ्र आया तू । अब तक हम सबने एक ग्रास भी नहीं खाया है ।’ बालकोंने हर्षसे पुकारकी और अपने मण्डलके मध्य मार्ग बनाया । दोनों भाई मध्यमें सटकर बैठ गये तो दाऊके सम्मुख एकने कमल पत्र रख दिया और कन्हार्ई तो अब तनिक अग्रजकी ओर मुड़कर बैठ गया है । यह अब भाईके पात्रमें-से ही ग्रास उठावेगा ।

कन्हार्ईके कर पर दधि-भातका ग्रास नहीं है और मुख तथा दाहिना हाथ दहीसे सना नहीं है, यह कोई ध्यान देने योग्य बात तो है नहीं । बछड़े हाँकने गया था तो हाथका ग्रास मुखमें दे लिया होगा या किसी बछड़े, कपिको दे दिया होगा । हाथ कहीं धो लिया होगा या पोंछ लिये होंगे ।

‘दादा, आज तो तेरा जन्म-नक्षत्र है । आज तुझे माँ ने कैसे वनमें आने दिया ? इतनी देरसे तू क्यों आया ?’ यह किसीने नहीं पूछा । सब छोटे बालक ही तो हैं । दादाको आया देखकर सब प्रसन्न हो गये । किसीको कुछ पूछनेकी याद नहीं रही । कन्हार्ईके साथ हैंसते, परस्पर एक दूसरेको चिढ़ाते, थोड़ी छीना झपटी करते भोजन करनेमें दूसरी कोई बात किसीको स्मरण आ भी कैसे सकती है । सबकी दृष्टि, मन तो कन्हार्ईमें लगा है ।

सब बालक लगभग एक वर्ष बड़े हो गये हैं । माया-निद्रामें सोये रहनेपर भी उनके शरीर तो बड़े ही हैं; किन्तु जब बड़े हुए बछड़ोंकी ओर ही किसीका ध्यान नहीं गया तो अपने या सखाओंकी ओर कैसे ध्यान जा सकता था ।

ध्यान तो घर लौटनेपर भी किसी बालकका इस बातपर भी नहीं

गया कि उनकी गायोंने दूसरे बछड़े-बछड़ी दे दिये हैं और उनमें भी अनेक कई दिन या महीने-दो महीनेके हो चुके हैं । भगवती योगमायाने किसीको भी चौंकने नहीं दिया था ।

अवश्य ही सार्यकाल वनसे लौटते समय बालकोंका ध्यान मृत अघासुरके शरीरकी ओर गया था । उनमें अनेकोंने दौड़कर उसे छूकर देखा । उनके मनमें तो यही था कि आज ही इसे कन्हाईने मारा है । अतः कई पुकार उठे—‘कनू ! यह तो सूख भी गया ।’

‘आज कितनी धूप थी, यह तुझे पता भी है ।’ दूसरेने पुकारनेवालोंसे कहा—‘सूख तो जाना ही था इसे ।’

‘अब यह बहुत अच्छी गुफा हो गयी !’ बालकोंने झांककर कुछ भीतर घुसकर देखकर निर्णय किया—‘अब लुकाछिपी खेलते समय छिपनेका यह अच्छा स्थान हो गया ।’

कन्हाईके सखा जिसे गुफा मानकर उसमें छिपना चाहते थे उस अघको निष्प्राण करके, खिलौना बनाकर खेलनेके लिए उन्हें ब्रजराजकुमारने दे दिया था ।

‘आज कन्हाईने वनमें बड़ा भारी अजगर मारा ।’ बालकोंने घर जाकर समाचार दिया—‘वह तो हमारे सब बछड़े और हम सबको निगल ही गया था ।’

ब्रजमें सब कार्य पूर्ववत् चलने लगे । बीचका एक वर्ष स्वप्नके समान सभीको विस्मृत हो गया । कुछ अद्भुत, अस्वाभाविक भी हो गया था मध्यमें, यह किसीको भी स्मरण नहीं रहा ।



परिशिष्ट-

(विवाह)

अब यह परिशिष्ट क्यों ? यह अध्याय भी मूलमें क्यों नहीं ? इसलिए कि मुझे स्मरण नहीं कि यह कथा मैंने कहाँ पढ़ी या किससे सुनी है । इसकी प्रामाणिकता बहुत सन्दिग्ध है । वैसे तो यह पूरी पुस्तक ही उपन्यास है; किन्तु सम्भव प्रमाणके अनुसार शेष सब तो सम्भव है; किन्तु इसके सम्भव होनेमें भी विवाद है ।

इतनेपर भी इसको देनेका कारण है । श्रीचैतन्यमहाप्रभुका माध्व-गौड़ेश्वर सम्प्रदाय मधुर भावमें भी परकीया भावका चिन्तक है । इसे वह सर्वश्रेष्ठ भाव मधुर भावमें भी मानता है । श्रीमद्भागवतको परम प्रमाण मानकर भी गौड़ीय सम्प्रदायके विद्वानोंने अपने ग्रन्थोंमें अनेक उद्भावनाएँ की हैं । उन्हें गोपियोंकी शारीरिक पवित्रता भी अभीष्ट है और परकीया भाव भी । इसके लिए उनकी विचित्र उद्भावनाएँ हैं । वे महारासमें सम्मिलित होनेवाली गोपियोंको अजातपुत्रा, कुमारी प्राय मानते हैं । उनका प्रतिपादन है कि गोप बालक सब पुंसत्वहीन थे, अतः उनसे विवाहिता होनेपर भी उनकी पत्नियाँ कुमारी प्राय थीं ।

स्पष्ट है कि परकीया भावकी सिद्धिके लिए यह अटपटी कल्पनाकी गयी है; किन्तु श्रीमद्भागवतका वर्णन इसके अनुकूल लगता नहीं है ।

‘पाययन्त्यः शिशून् पयः । (२०.२९.६)

‘शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिद् । (१०.२९.६)

‘ता वार्यमाणाः पतिभिः । (१०.२९.८)

इन गोपियोंके पति थे, ये विवाहिता थीं, यह बात तो गौड़ेश्वर सम्प्रदायके विद्वानोंको स्वीकार ही है । इसीसे तो उनके परकीया भावकी पुष्टि होती है । ‘पाययन्त्यः शिशून्पयः’ का अर्थ वे करते हैं कि ‘दूसरोके पुत्रोंको गायका दूध पिला रही थीं ।’

यदि इस अर्थको मान लें तो श्रीकृष्णने आगे जो कहा—‘मातरः पितरः

पुत्रा' (१०.२९.२०) अथवा 'क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च' (१०.२९.२२) इसकी संगति नहीं बैठती । शिशुओंकी माताएँ उन्हें घर छोड़कर तो कहीं जा नहीं सकती । उनके शिशुको कोई दूसरी दूध पिलाते छोड़कर चल दे तो रोते बच्चेको उसकी माता उठा लेगी अथवा क्रन्दन करने देगी ?

इन उद्भावनाओंका कारण बहुत सामान्य लौकिक दृष्टि है कि 'गोपियोंको शारीरिक दृष्टिसे पवित्र-पुरुष संसर्ग वर्जित ही होना चाहिये, जब कि उद्धवजी का वाक्य भी श्रीमद्भागवतमें ही है— 'क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टा' (१०.४७.५९)

मधुर भावोपासकोंकी दृष्टि गोपियोंकी महत्तापर तो रहती है; किन्तु उनके प्रेमकी महत्तापर नहीं रहती और श्रीकृष्णपर तो रहती ही नहीं । अतः उन्हें ये अटपटी बातें सूझती हैं ।

प्रेम किसका महान है ?-

१. अ—एक कुमारीका किसी अत्यन्त सुन्दरके प्रति ।
२. ब—एक नपुंसकसे विवाहिताका अत्यन्त सुन्दरके प्रति ।
३. स—एक पति-पुत्रवालीका पति-पुत्रकी उपेक्षा करके होनेवाला ।

आपको मानना होगा कि ब श्रेणी तो अपनी परिस्थितिसे विवशा है । उसमें प्रेम ही नहीं है । केवल शारीरिक वासना है । अ श्रेणीका प्रेम भी सहज स्वाभाविक है । सचमुच त्याग और प्रेम स श्रेणीमें ही है ।

वासनावान पुरुष नारीकी युवावस्था तथा कौमार्य चाहता है । उसका आकर्षण पुत्रवतीके प्रति घट जाता है । श्रीकृष्ण वासनावान हैं ? उन्होंने रासक्रीड़ाकी गोपियोंपर कृपा-अनुग्रह करनेके लिए अथवा वासना-व्यग्र होकर ?

यहीं एक प्रश्न—मान लीजिये कि एक वृद्धा नारी है जो पूरी युवावस्थामें वेश्या रही थी । अब उसका सर्वांग गलित कुष्ठसे सड़ रहा है । रोगने उसे शरीरसे, संसारसे अत्यन्त विरक्त कर दिया है और पूर्वजन्मोंके किसी महान संस्कारसे अथवा किसी लोकोत्तर संतके अनुग्रहसे उसमें श्रीकृष्णको पतिरूपमें पानेकी तीव्रतम उत्कटलालसा जाग जाती है । ऐसी दशामें वह तड़प-तड़पकर मर जायेगी या श्रीकृष्ण उसे स्वीकार करके परितृप्त कर देंगे ?

श्रीचैतन्यमहाप्रभुने एक गलितकुष्ठके रोगीको आलिंगन दिया था । श्रीकृष्ण कामुक हैं ? वे भी शरीरकी अवस्था देखेंगे ? उनकी अकारण करुणाशीलता उसे भुजपाशमें भर लेनेको आतुर नहीं बना देगी ? श्रीकृष्णके स्वरूपपर दृष्टि हो तो अटपटी कल्पनाएँ अनावश्यक हैं ।

गोपियोंमें अनेक विवाहिता थीं । कुछ पुत्रवती भी थीं । इनका विवाह कब हुआ ? क्यों हुआ ? श्रीकृष्णके सखाओंसे ही हुआ होगा, यह निश्चित है; क्योंकि नन्दब्रज और बरसानेमें तो श्रीकृष्णके सब सखा ही थे ।

सब बालिकाओंका विवाह नहीं हुआ था, यह भी निश्चित लगता है । दाऊदादासे पहिले कन्हाईका विवाह नन्दबाबा नहीं कर सकते थे और दाऊका विवाह तो श्रीवसुदेवजी-को करना था । अतः बालिकाओंमें जो नन्दनन्दनसे ही विवाही जानी थीं, उनका विवाह भी नहीं हो सकता था । किनका और क्यों विवाह हुआ, यही वर्णन इस अध्यात्मका विषय है ।

गोपकन्याका विवाह माँकी गोदमें वह हो तब भी हो सकता था, इस प्रथाको देखते आयुका प्रश्न नहीं है; किन्तु वत्स-हरणकी घटनाके बहुत बाद बालिकाओं द्वारा कात्यायनी-पूजन तथा चीर-हरणका वर्णन है । कात्यायनी-पूजन ही बालिकाएँ श्रीकृष्णको पतिरूपमें पानेके लिए करती थीं । अतः यह तो स्पष्ट है कि नटखट नन्दलालने जिनका चीर-हरण किया, वे सब उस समय तक कुमारिकाएँ थीं । जिनका विवाह हो चुका था, वे भला क्यों उस कात्यायनी-पूजनमें सम्मिलित होतीं ।

महानुभावोंका कहना है कि गोपियोंके पाँच वर्ग हैं । १—नित्यसिद्धा २—साधन सिद्धा ३—वर प्राप्ता ४—ऋषिचरी ५—श्रुतिचरी ।

१. नित्यसिद्धा—जो श्रीकृष्णकी अथवा उनके नित्य सखाओंकी नित्य सहचरी हैं । जो गोलोकसे अवतीर्ण हुई हैं । इनमें श्रीराधा, चन्द्रावली तथा उनकी सखियाँ तो हैं ही, उस नित्य धाममें श्रीकृष्णको भाभियोंका सुख-विनोद देनेवाली उनके सखा—भाइयोंकी पत्नियाँ भी हैं । इनका विवाह वत्स-हरण कालमें सम्भव नहीं था ।

२. साधन सिद्धा—अनेक जन्मोंसे साधन करके, मधुर भावके परिपाकसे जो श्रीराधाके परिकरोंमें सम्मिलित होनेकी अधिकारिणी हो गयी

थीं, उनका भी विवाह नहीं हो सकता था ।

इन्हीं दोनों वर्गोंमें-से भाभियोंके अतिरिक्त कुमारिकाओंने कात्यायनी-पूजन किया था ।

३. श्रीरामावतारमें जनकपुरकी नारियाँ अथवा वनकी किरातिनें तथा किसी अन्य वामनादि अवतारोंमें जो नारियाँ भगवान्के रूपमाधुर्यसे आकृष्ट हुईं और उन्हें पतिरूपसे पाना चाहा, उन वाञ्छा कल्पतरुने कहीं मनसे और कहीं कहकर भी अनुमोदन कर दिया कि द्वापरमें कृष्णावतारमें उनको स्वीकार कर लेंगे ।

४. ऋषिचरी—श्रीरामका सौन्दर्य ही ऐसा कि उन्हें देखकर खरदूषण तक थकित-विमुग्ध रह गये थे । अतः दण्डकारण्यके बहुतसे ऋषियोंका चित्त लालायित हो गया और वे श्रीरामका अंग संग पानेको उत्सुक हो उठे तो आश्चर्य क्या । मर्यादा पुरुषोत्तमने उन्हें द्वापरमें अपनानेका आश्वासन दे दिया । वे सब ब्रजमें गोपकन्या होकर उत्पन्न हुईं ।

५. श्रुतिचरी—अनेकों श्रुतियोंका मनोमन्थन था उस सच्चिदानन्द का प्रत्यक्ष संसर्ग पानेका । उन्हें भी द्वापरमें ही ऐसा अवसर मिलना था । गोपगृहोंमें वे भी कन्याएँ बनकर प्रगट हुईं ।

यह अन्तिम दो वर्ग और वर प्राप्ताओंमें-से भी कुछको केवल प्रत्यक्ष-संसर्ग मिलना था । अतः इसी वर्गका वत्सहरण कालमें विवाह हुआ और इन्हींमें पुत्रवतियाँ भी थीं । श्रुति और ऋषि दोनों स्वरूपसे ही नित्य पवित्र तथा तत्त्वग्राही । अतः अन्य-संसर्ग जो श्रीकृष्णके सखाओंका ही संसर्ग था, उन्हें दूषित नहीं कर सकता था ।

इस विवेचनकी आवश्यकता आप समझ सकते हैं । अब विवाहकी घटनाका वर्णन करें ।



